विभोम स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

Dhingra Family Foundation USA

RNI Number : MPHIN/2016/70609
ISSN NUMBER : 2455-9814
वर्ष : 7, अंक : 26
जुलाई-सितम्बर 2022
मूल्य 50 रुपये

ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन
शिवना प्रकाशन
सम्मान समारोह

शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित नई पुस्तकें

शिवना प्रकाशन

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in

amazon
http://www.amazon.in

flipkart.com
http://www.flipkart.com

Mobile - +91-9806162184, +91-6265665580
WhatsApp +91-8819806162
twitter https://twitter.com/shivnac
facebook https://www.facebook.com/shivna.prakashan
YouTube https://www.youtube.com/c/ShivnaCreations
Email- shivna.prakashan@gmail.com

संरक्षक एवं
प्रमुख संपादक
सुधा ओम ढींगरा

संपादक
पंकज सुबीर

क़ानूनी सलाहकार
शहरयार अमजद ख़ान (एडवोकेट)

तकनीकी सहयोग
पारुल सिंह, सनी गोस्वामी
डिज़ायनिंग
सुनील सूर्यवंशी, शिवम गोस्वामी

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय
पी. सी. लैब, शॉप नं. 2-7
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001
दूरभाष : +91-7562405545
मोबाइल : +91-9806162184
ईमेल : vibhomswar@gmail.com

ऑनलाइन 'विभोम-स्वर'
http://www.vibhom.com/vibhomswar.html
फेसबुक पर 'विभोम स्वर'
https://www.facebook.com/vibhomswar

एक प्रति : 50 रुपये (विदेशों हेतु 5 डॉलर $5)
सदस्यता शुल्क
3000 रुपये (पाँच वर्ष), 6000 रुपये (दस वर्ष)
11000 रुपये (आजीवन सदस्यता)
बैंक खाते का विवरण-
Name: Vibhom Swar
Bank Name: Bank Of Baroda,
Branch: Sehore (M.P.)
Account Number: 30010200000312
IFSC Code: BARB0SEHORE

संपादन, प्रकाशन एवं संचालन पूर्णत: अवैतनिक, अव्यवसायिक। पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा। पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर माह में प्रकाशित होगी। समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर (मध्यप्रदेश) रहेगा।

Dhingra Family Foundation USA

विभोम स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका
वर्ष : 7, अंक : 26, त्रैमासिक : जुलाई-सितम्बर 2022
RNI NUMBER : MPHIN/2016/70609
ISSN NUMBER : 2455-9814

आवरण चित्र
राहुल पुरविया

Dhingra Family Foundation
101 Guymon Court, Morrisville
NC-27560, USA
Ph. +1-919-801-0672
Email: sudhadrishti@gmail.com

इस अंक में

विभोम स्वर

वर्ष : 7, अंक : 26,

जुलाई-सितम्बर 2022

संपादकीय 3

विस्मृति के द्वार

कहानियों से पहले वाली मैं.....

सूर्यबाला 5

कथा कहानी

बेड नंबर 20

मंजुश्री 9

जूही के फूल

किशोर दिवसे 14

राखीगढ़ी का आदमी

मुरारी गुप्ता 17

टूक-टूक कलेजा

हंसा दीप 20

फिर वापसी

प्रो. हर्षबाला शर्मा 22

पारिजात की महक

ममता त्यागी 25

बेरहम

सुधा गोयल 29

औराते-बौराते

अमरेंद्र मिश्र 32

भाषांतर

अगस्त के प्रेत

लातिन अमेरिकी कहानी

मूल लेखक : गैब्रिएल गार्सिया मार्खेज़

अनुवाद : सुशांत सुप्रिय 43

ललित निबंध

पुनरपि जन्मम्, पुनरपि मरणम्

डॉ. वंदना मुकेश 45

शहरों की रूह

धरती की सबसे खुबसूरत तस्वीरों में एक

लेक टाहो / जयश्री पुरवार 48

झील किनारे बसा भव्य शहर:

चैस्टरमेरे, कैनेडा / बलविन्दर 'बालम' 50

व्यंग्य

मिर्ज़ा की याद में

उर्दू से अनुवादित व्यंग्य

मूल रचना – मुजतबा हुसैन

अनुवाद – अखतर अली 52

देश का ग़रीब नंबर वन

कमलेश पांडे 54

लघुकथा

दूर की छाँव

ज्ञानदेव मुकेश 24

पिल्ला पीहर का...

व्यग्र पाण्डे 42

भोजन माता

सुरेश सौरभ 53

एक थी गुड्डी

भारती शर्मा 55

संस्मरण

मैं और हिन्दी

लेखक-प्रो. जियांग जिंगकुई

अनुवाद– विवेक मणि 56

कविताएँ

प्रमोद त्रिवेदी 59

नरेंद्र नागदेव 60

नंदा पाण्डेय 61

रेनू यादव 62

गीता घिलोरिया 63

केशव शरण 64

गीत

डॉ.मनोहर अभय 65

दोहे

डॉ.गोपाल राजगोपाल 66

ग़ज़ल

सुभाष पाठक 'ज़िया' 67

रपट

साहित्य समागम

आकाश माथुर 68

आख़िरी पन्ना 72

विभोम-स्वर सदस्यता प्रपत्र

यदि आप विभोम-स्वर की सदस्यता लेना चाहते हैं, तो सदस्यता शुल्क इस प्रकार है : 3000 रुपये (पाँच वर्ष), 6000 रुपये (दस वर्ष) 11000 रुपये (आजीवन सदस्यता)। सदस्यता शुल्क आप चैक / ड्राफ़्ट द्वारा विभोम स्वर (VIBHOM SWAR) के नाम से भेज सकते हैं। आप सदस्यता शुल्क को विभोम-स्वर के बैंक खाते में भी जमा कर सकते हैं, बैंक खाते का विवरण-

Name of Account : Vibhom Swar, Account Number : 30010200000312, Type : Current Account, Bank : Bank Of Baroda, Branch : Sehore (M.P.), IFSC Code : BARB0SEHORE (Fifth Character is "Zero")

(विशेष रूप से ध्यान दें कि आई. एफ. एस. सी. कोड में पाँचवा कैरेक्टर अंग्रेज़ी का अक्षर 'ओ' नहीं है बल्कि अंक 'ज़ीरो' है।)

सदस्यता शुल्क के साथ नीचे दिये गए विवरण अनुसार जानकारी ईमेल अथवा डाक से हमें भेजें जिससे आपको पत्रिका भेजी जा सके: 1- नाम, 2- डाक का पता, 3- सदस्यता शुल्क, 4- चैक/ड्राफ़्ट नंबर, 5- ट्रांज़ेक्शन कोड (यदि ऑनलाइन ट्रांस्फ़र है), 6-दिनांक (यदि सदस्यता शुल्क बैंक खाते में नकद जमा किया है तो बैंक की जमा रसीद डाक से अथवा स्कैन करके ईमेल द्वारा प्रेषित करें।)

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय : पी. सी. लैब, शॉप नंबर. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001, दूरभाष : 07562405545, मोबाइल : 09806162184, ईमेल : vibhomswar@gmail.com

संपादकीय

नए बेघर लोग

सुधा ओम ढींगरा
101, गाईमन कोर्ट, मोर्रिस्विल
नॉर्थ कैरोलाइना-27560, यू.एस. ए.
मोबाइल- +1-919-801-0672
ईमेल- sudhadrishti@gmail.com

हर युग में समाज उच्च वर्ग, मध्यम वर्ग और निम्न वर्ग में विभाजित रहा है और बेघर (होमलेस) लोग भी हर काल में रहे हैं। ऐसा विभाजन आर्थिक कारणों से होता रहा है। बहुत सी विसंगतियों और सरोकारों का कारण भी यह विभाजन रहा है। हर देश का समाज मुख्य तीन श्रेणियों से ही जाना-पहचाना जाता रहा है। 'रहा है' इसलिए लिख रही हूँ कि वर्तमान में आर्थिक विभाजन की श्रेणियाँ कोई महत्त्व नहीं रखतीं। विश्व में नए विभाजन ज़ोर पकड़ रहे हैं। नए विभाजन में आर्थिक कारणों से बनी श्रेणियों का मिश्रण हो चुका है। आप सोच रहे होंगे मैं यह क्या कह रही हूँ ? पूरा विश्व इस समय चार नई श्रेणियों में विभाजित हो गया है, कट्टरपंथी, वामपंथी, मुफ़्तपंथी और उदारवादी। कट्टरपंथी और वामपंथी दोनों एक जैसे हैं अतिवादी।

कट्टरपंथी, भिन्न-भिन्न देशों में फैले भिन्न-भिन्न धर्मों द्वारा दी गई सोच से प्रभावित धर्मांध लोग हैं। इनके पास अपने देश हैं, अपनी भूमि है और अपने संसाधन हैं। उनके अनुयायी पूरे विश्व में फैले हैं।

वामपंथ, एक सोच और विचारधारा है, जिससे मस्तिष्क की कंडीशनिंग हो जाती है यानी ब्रेन वाश। विचारधारा के अनुसार ही सही ग़लत सोचा और समझा जाता है। इस विचारधारा वाले कुछ देश हैं, जो इसे पूँजीवाद से बेहतर समझते हैं।

कट्टरपंथी और वामपंथी एक ऐसा वर्ग निर्मित कर रहे हैं, जिसमें सभी श्रेणियों के लोग इनके अनुयायी हैं। यहाँ तक कि शिक्षित और अशिक्षित लोगों की सोच में भी अंतर नहीं रहा।

कट्टरपंथियों और वामपंथियों ने सोशल मीडिया का खूब प्रयोग किया है और कर रहे हैं। सोशल मीडिया पर फ़ैली अफवाहों की सच्चाई जानने की कोई कोशिश नहीं करता। जिसके कारण बहुत से देशों की आंतरिक स्थितियाँ बिगड़ रही है। सोशल मीडिया पर फैली भ्रांतियाँ विपरीत प्रभाव डाल रही हैं। अमेरिका के पूर्व प्रेजिडेंट डोनॉल्ड ट्रम्प हार कर भी अपनी जीत का झूठा प्रचार कर रहे हैं और उसके लिए उन्होंने सोशल मीडिया का खूब दुरुपयोग किया। जब उन्हें सोशल मीडिया के प्लेटफार्मों पर बैन कर दिया गया, उन्होंने ट्विटर की तरह सोशल मीडिया पर अपना प्लेटफार्म लॉन्च कर दिया। उनका प्रयास है, इस माध्यम से वे अपनी सोच के प्रचार का प्रसार कर सकें, ताकि उनके अनुयायी उनके द्वारा फैलाई भ्रांतियों और अफवाहों पर विश्वास करते रहें। इस तरह के प्रचार से देश दो वर्गों में विभाजित हो रहा है। कट्टरवादियों

संपादकीय

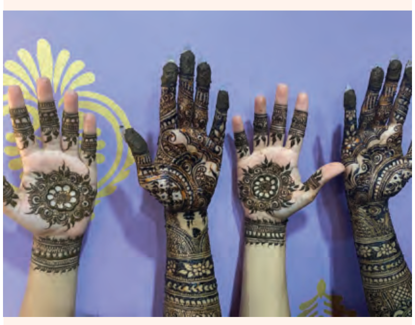

बरसात का मौसम और हाथों की मेंहदी का पुराना रिश्ता है। मेंहदी की सौंधी गंध और बरसात की फुहारें एक दूसरे का पूरक हैं। रक्षा बंधन, हरियाली तीज जैसे पर्व भी वर्षा में आते हैं, जिनमें मेंहदी एक आवश्यक तत्व होती है। परंपराएँ जाने कब से चली आ रही हैं, मगर आज भी नई की नई बनी हुई हैं।

और उदारवादियों में।

मुफ़्तवादी प्रवृत्ति तो पहले से ही विश्व में विद्यमान थी। कोरोना में सभी देशों की सरकारों ने ग़रीबी रेखा से नीचे वालों को, नौकरी छूटने वालों को, कम वेतन वालों को भत्ता देना शुरू किया, उसका परिणाम यह हुआ कि अब कोई काम नहीं करना चाहता। अमेरिका में कामगारों की कमी हो गई है। अमेरिका ही क्यों यूरोप के देशों में भी यही हाल है।

भारत में तो चुनाव जीतने के लिए इतना कुछ फ्री दिया जाता है, लेने वाला सोचता ही नहीं है कि मुफ़्त की बाँट का पैसा आएगा कहाँ से? कुछ साल अगर खिला भी दिया जाएगा तो उसके बाद क्या होगा? आने वाली पीढ़ी को इसका परिणाम भुगतना पड़ेगा। कोई यह नहीं सोचता, आने वाली पीढ़ी के लिए क्या विरासत छोड़ रहे हैं।

राजनीतिज्ञ तो अपना स्वार्थ साधते हैं, जीतने के लिए वे कुछ भी कर सकते हैं, लोग भी अपना स्वार्थ देखते हैं तो देश का कौन सोचेगा? फ्री में बाँटते-बाँटते पाकिस्तान और लंका जैसी स्थिति भारत की न हो जाए, इसी बात का डर है।

अमेरिका में तो इस विषय पर बहुत चिंतन शुरू हो गया है। पूँजीवादी देश को अपनी इकोनॉमी की चिंता होने लगी है फिर भारत तो विकासशील देश है।

उदारवादी सोच वाले हर देश में विद्यमान हैं, जो शांति का जीवन चाहते हैं, मानवता के पुजारी होते हैं और तर्कशील होते हैं। हालाँकि उदारवादियों की संख्या हर देश में बहुत है और ये प्रेम से रहने वाले वाले प्राणी हैं। मुश्किल यह है कि इनकी किसी भी देश में सुनवाई नहीं। सोशल मीडिया पर भी इनके विचारों को महत्त्व नहीं दिया जाता। वहाँ तो नकारात्मकता, झूठ और अफ़वाहों का बोलबाला होता है और लोग उन्हीं पर विश्वास करने लगते हैं। टीवी चैनल्ज़ भी ग़लत बात को सुबह से शाम तक इतनी बार दोहराते हैं कि वह लोगों के भीतर बैठ जाती है और उनके मस्तिष्क उसे सही समझने लगते हैं। फ़ेसबुक और ट्विटर का भी यही हाल है। सोशल मीडिया में वायरल हुए समाचार की सच्चाई जानने की कोई कोशिश नहीं करता। यह वर्तमान युग की त्रासदी है और इसका परिणाम हर देश में देखने को मिल रहा है। युद्ध, हिंसा, मार-काट, युवा पीढ़ी के हाथों में बंदूकें, तलवारें, नशीले पदार्थ यह सब किसकी देन है, गंभीरता से सोचने का विषय है। इनके बढ़ावे का सोशल मीडिया ही ज़िम्मेदार है। सोशल मीडिया के कारण विश्व में हिंसा बहुत बढ़ गई है।

सभी देशों में सिर्फ उदारवादी वर्ग ही ऐसा वर्ग है, जिसकी सोच और विवेक के लिए कोई प्लेटफार्म या भूमि नहीं। आज के युग में ये नए बेघर लोग हैं, जिन्होंने मानवता और प्रेम को ज़िंदा रखा हुआ है।

आपकी,

सुधा ओम ढींगरा

कहानियों से पहले वाली मैं.....

सूर्यबाला

उस छोटी-सी पतली-सी-गली की यात्रा, मेरी क़लम कितने-कितने वर्षों से कर रही है, लेकिन गली है कि ख़त्म होने को नहीं आती। और ताज्जुब, क़लम को भी कोई थकान नहीं महसूस होती इस यात्रा में। शायद वह चाहती है, यह गली कभी ख़त्म न हो। यह यात्रा चलती रहे। शायद वह जानती है कि यह गली ज़िंदगी से पहले ख़त्म होने वाली भी नहीं। बहुत से राजमार्ग जुड़े, नाट्यशालाएँ खुलीं, इमारतें उठीं, ढहीं... दुकानों के शटर गिरे और खुले, लेकिन यात्रा चलती रही। गली जस की तस रही मेरे ज़हन में। क़लम को जब भी सुस्ताने की मंशा भी हुई, तो उसी गली के तीसरे मकान पर... जो तीन दशक पहले ही बिक चुका है।

आँगन में लाल मुनियोंवाले पिंजड़े टँगे होते थे। चारों और चुनार मिट्टी के नक़्क़ाशीदार गमलों में चितकबरे क्रोटन पाम। बारहसिंगे की सींगें, एक दो नहीं, पूरी एक कोठरी भर। राजा रवि वर्मा की आदमकद पैंटिंग्स की अनुकृतियाँ। पिता थे मध्यमवर्गीय, लेकिन शौक रजवाड़ों के पालते थे।

आज सोचती हूँ, माँ उन दिनों ज़्यादा से ज़्यादा चालीस की रही होंगी। किन्हीं कारणों से घर में सिर्फ बीस दिनों तक एक शिक्षक ने पढ़ाया था - हिन्दी, उर्दू, अंग्रेज़ी का प्रारंभिक ज्ञान। चालीस तक पहाड़े, जब तक पिता थे, तब तक तो इतने की भी ज़रूरत कभी महसूस न हुई। सरकारी मुलाज़िम की बीवी, नौकर-चपरासियों से घिरी इत्मीनान से गृहस्थी चलाती थीं। मनोनुकूल पति, घर और विवाह के कई वर्षों बाद कोख में आई बेटियाँ, ऊपर से अंतिम संतान के रूप में गोदी में खेलता बेटा, ... अपने सुख, सौभाग्य पर इतराती माँ-अब एक असहाय बेवा थीं, सामने चार बड़ी-छोटी बेटियाँ और एक ढाई बरस का बेटा। दो-तीन मझोली बीमा पॉलिसियाँ और मध्यमवर्गीय गृहस्थ की काटी-कपटी बचतों की पासबुकें। स्थायी आय के सामने एक बड़ा-सा क्रॉस टँगा था। पिता शिक्षा विभाग में उच्च अधिकारी थे, किंतु सेवा-निवृत्ति पर पेंशन का प्रावधान था, मृत्यु पर नहीं। इसलिए कुलमिला कर एक विधवा और उसके पाँच बड़े होते बच्चों के गुज़ारे की जुगत बिठायी जाने लगी, पर किसी के बस का था क्या यह?

और बिठाता भी कौन? दोनों तरफ के कुटुंबों में चाचा, मामा, ताऊ के नाम पर कुछ हितैषी रिश्तेदार। सिर्फ माँ की एक माँ समान ही बारह बरस बड़ी बहन जिन्हें हम मौसी नहीं, बड़ी अम्मा कहते थे। उन्होंने तो निर्णय लिया कि माँ और हम बच्चों को वे स्थायी रूप से अपने घर, अपने शहर जौनपुर ले जाएँगी। यहाँ इन असहायों को आख़िर किसके भरोसे छोड़े। सरकारी फर्नीचर, दरियाँ, लपेट-लदवाकर ले जाए जा चुके थे। पाम, क्रोटन तपती धूप में झुलस रहे थे। पिंजरों की लालमुनियाँ और छोटे हौज की रंगीन मछलियाँ, सड़क पार के पानवाले के पास पहुँचा दी गईं थी। सिर्फ साँय-साँय करता, ज़्यादा बड़ा, ज़्यादा भयावह दिखता नफ़ीस मुँडेरों और मेहराबों वाला तीन तल्ला मकान बचा था, बस।

हम सब के नाम स्कूल से कटवा दिये गए और हम मौसी के साथ जौनपुर चले गए। महीने-

सूर्यबाला
बी- 504 रूनवाल सेंटर, गोवंडी स्टेशन रोड, देवनार (चेंबूर), मुंबई-88, महाराष्ट्र
फ़ोन- 022-25504927 (निवास)
मोबाइल- 9930968670, 9323168670
ईमेल- suryabala.lal@gmail.com

डेढ़ महीने वहाँ रहे भी। इस बीच माँ अपने अंदर किन झंझावाती दुश्चिंताओं से गुज़र रही थीं, हम बच्चों को इसकी क्या ख़बर होती। यह सब समझने या माँ से किसी संवाद, विमर्श की उम्र नहीं थी हमारी...., लेकिन माँ स्वयं निर्णय पर पहुँची कि वे बनारस अपने घर में ही अपने बच्चों को पाल-पोस कर बड़ा करेंगी। कोई समस्या हुई, तो बनारस से जौनपुर है ही कितना दूर।

डेढ़ महीने बाद बनारस के उसी स्कूल में दुबारा एडमीशन कराया गया, जहाँ से नाम कटवा कर ले जाए गए थे। क्लर्क ने सारी बकाया फीस का हिसाब लगाकर पैसे लिये और रसीद काटते हुए अजीब बेमुरव्वत हँसी के साथ पूछ बैठा -सोच लिया है न अच्छी तरह? फिर तो नहीं कटाया जाएगा नाम? पूछा उसने साथ गए व्यक्ति से था, खिसियानी-सी शर्मिंदगी मुझे हुई। मन आहत, उदास था। बिछुड़ी सखी-सहेलियों से मिलने का कोई उत्साह नहीं था। सारे कुछ से दूर भाग जाने का निरुत्साही अवसाद था।

पिता की मृत्यु हमें समाज में खुले-आम निरीह और अनाथ प्रमाणित कर गई थी। यह मेरे बाल मन के लिए असह्य स्थिति थी। महीनों पिता की मृत्यु वाले प्रसंग से उसके संबंध में पूछे जाने के भय से कतराती। टीचरों, लड़कियों से आँखें चुराती। लोगों की सहानुभूति और जिज्ञासा से एक घबराहट, वितृष्णा-सी होती। तब से अब तक किसी का दु:ख बाँटना होता है, तो मौन होकर ही महसूस करती, बाँटती हूँ। इस बीच स्कूल में काफी पढ़ाई हो चुकी थी। अगले ही दिन मेरा अंग्रेज़ी का टेस्ट था। मैंने वे सारे पाठ ज़रा भी नहीं पढ़े थे। बड़ी बहन ने सारे कठिन शब्द, स्पेलिंग, उच्चारण, अर्थ सहित दो-तीन पृष्ठों में लिख कर दिए। घबराई, परेशान, हताश मैं वह काग़ज़ लेकर, छत पर टहल-टहल कर याद करती जाती, फ्रॉक की आस्तीन से आँसू पोंछती जाती।

लिखने के बहाने उस अवसादी बचपन में इसी तरह जुटते गए। शायद मेरी बेचैनी कोई पनाह या पलायन के रास्ते ढूँढ़ती थी और यह रास्ते मुझे मेरी क़लम सुझाती थी। चरम हताशा से भरी कविताएँ, कहानियाँ, लेकिन जब वे लड़कियों-टीचरों के माध्यम से स्कूल की पत्रिका, समारोहों में सराही गईं, तो जैसे अँधेरे में एक दिया-सा जला। प्यासी आत्मा के लिए अंजलि भर पानी की तरह। क्रमश: संगीत, नाटक, नृत्य, साहित्य और विभिन्न प्रतियोगिताओं से जुड़े सांस्कृतिक कार्यक्रमों में रुचि बढ़ती गई और बहुत जल्दी अपने विद्यालय के राष्ट्रीय पर्वों, समारोहों का अनिवार्य अंग बन गई।

इस बीच कटावदार मुँडेरों और मेहराबोंवाले हमारे मकान में कई किरायेदार रख लिए गए। शानदार फर्नीचरों, राजा रवि वर्मा की पेंटिंग्स से सजी रहनेवाली हमारी बैठक, बरामदे में जहाँ-तहाँ पत्थर के कोयले की अँगीठी में दाल उफनती होती और अलगानियों पर अधमैले अँगोछे और लुंगियाँ टँगी होतीं।

फिर भी पासबुकें बड़ी तेज़ी से खाली हो रही थीं। मेरे अबोध बचपन- का सबसे दहशतज़दा अहसास वह था, जब माँ ने आख़िर में बची किसी पासबुक से बचे-खुचे रुपये निकाले और घर आकर उस खाली हुई पासबुक को खाली-खाली आँखों से देखती रहीं। दशकों बाद...

योगदान इन सबका भी रहा या कहूँ इन सबका ही तो रहा मेरी शब्द यात्रा में। जीवन से जुड़ी ये सारी विडंबनाएँ, विद्रूप मेरे बचपन के अवचेतन में आ आकर दुबकते रहे, मेरे अनजाने। सालों, दशकों बाद, अभी भी उन अवसादी अहसास के बची से कभी 'न किन्नी न' निकलती है, तो कभी 'सुमिंतरा की बेटियाँ', 'आदमक़द', या 'लालपलाश के फूल न ला सकूँगा'... जैसी कहानियाँ। खाली पासबुकों वाला प्रसंग अनायास 'यामिनीकथा' में कब कैसे आ गया, मुझे पता भी नहीं। शायद उस दृश्यप्रसंग (बचपन के) का एक भावनात्मक भार था, जो उपन्यास में आने के बाद ही हल्का हुआ।

इसी तरह का एक थोड़ा दिलचस्प प्रसंग। पिछले वर्षों, मेरे उपन्यास 'मेरे संधिपत्र' पर एम. फिल. करने वाली एक शोधछात्रा ने बताया कि परीक्षकों ने 'संधिपत्र' शब्द पर कामायनी के प्रभाव के विषय में प्रश्न किया उससे। ... सुनकर अचानक मुझे याद आया कि उन दिनों अक्सर मेरी पुस्तिकाओं, डायरी पर लिखा होता - आँसू से भीगे आँचल पर/अपना सब कुछ रखना होगा/तुमको अपनी स्मित रेखा से/ यह संधिपत्र लिखना होगा।

जीवन के व्यंग्य, कथा-कहानी के प्रसंग...लेकिन ज़िंदगी की ज़रूरतें इन सबसे पूरी तरह बेख़बर, बेलगाम बढ़ती जा रहीं थीं। हमारी ऊँची होती फ्रॉकें, ऊँची होती क्लासें, बढ़ती उम्र, बढ़ती फीस सहमा जाती हमें।

बरसों-बरस, माँ हम बच्चों से छुप कर घर के किसी कोने में रोतीं, लेकिन हमारी भूख-प्यास का संकेत मिलते ही बदहवास हो जुट जाती रसोई में। उन पर जुनून सा सवार था, अपने बच्चों को उनके पिता के समय की ही तरह पाल ले जाने का। बच्चों को किसी भी तरह का आर्थिक दबाव, अभाव न महसूस होने देने का। माँ हमारी छोटी से छोटी ज़रूरतें पूरी कर ले जाने के उपाय सोचतीं, हम उन्हें माँ की आँखों से छुपा ली जाने में। माँ सुविधाएँ तो जुटा देतीं, 'सुख' का क्या करतीं। ... यथासंभव हम बच्चे भी अपनी तरह से माँ के सामने खुश दिखने का ही अभिनय करते, वरना इनकी तपस्या व्यर्थ जाती न!

शहर के संभ्रांत, इज़्ज़तदार घरानों में हमारी गिनती थी। इसलिए माँ हमारी सामाजिक प्रतिष्ठा और मान-मर्यादा को लेकर सदैव सन्नद्ध रहतीं। वे यह भी समझती थीं कि सामाजिक प्रतिष्ठा और संपन्नता का बहुत करीबी रिश्ता हुआ करता है। ज़रा सी चूक सारी मान-मर्यादा मिट्टी में मिला सकती है और माँ को तो इसी समाज में चार-चार बेटियाँ ब्याहनी थीं, अकेले दम पर।

एक बात बहुत अच्छी थी। अपनी कटावदार नफ़ीस मुँडेरों और नक़्क़ाशियों वाली मेहराबों के साये में हमारा मकान, हमारी सारी बदहालियाँ छुपा ले जाया करता था। बाहर से देखने पर कोई विश्वास ही नहीं कर सकता था कि माँ के हाथों के डैमलकाट कड़े सराफे में बेचे जा चुके थे और उनकी कलाइयों की इकहरी चूड़ियाँ अब सोने की

नहीं, सोने की पॉलिशवाली हैं, लेकिन इन्हीं चूड़ियों और सफेद धुली साड़ी के बूते पर माँ ने उस समाज में चौबीस कैरेट की साख निभायी थी। दहेज की अतिवादी आतंकवादी न सही, परंपरावादी युग तो था ही। लेकिन शहर के संभ्रांत कुटुंबों ने, पूरी सदाशयता से, बिना शर्त, बिना माँग, उनकी बेटियों के हाथ माँगे थे। थोड़ा-बहुत शायद जानते थे कि ऊपर सहज शालीनता से मुस्कराती इस स्त्री के पैरों में काँटे ही बिंधे पड़े हैं।

किरायेदार हमेशा झींक-झींक कर, अपनी तंगहालियों का रोना रो-रो कर पैसे देते। प्राय: मकान छोड़ने से पहले, डेढ़ दो महीने की हेराफेरी भी कर जाते, लेकिन मकान टैक्स और बिजली का भुगतान माँ को समय पर ही करना पड़ता। कभी दुमंज़िले सायबान की बाहरी मुँडेर पर खड़ी होती और नीचे गली में साइकिल पर मकान टैक्स की नोटिसों का पुलिंदा बाँधे म्युनिसपैलिटी का कारिंदा दिखाई पड़ जाता, तो जैसे सहमकर सूख जाती। थरथराती शिराओं में भय की लहर-सी व्यापती, हाथ-पैर ठंडे होते महसूस होते। मन करता, माँ को नन्हें शिशु की तरह हाथों में उठा कर इन सारी आपदाओं से दूर उठा ले जाऊँ।

लेकिन जानती थीं, यह संभव नहीं था। हमारे वश में कुछ था, तो यही कि हम निरंतर खुशहाल बने रहने और दिखते रहने का अभिनय करते रहें।... एक हफ्ते शीशम का नक़्क़ाशीदार पालना बिकता, दूसरे हफ्ते भोंपू वाला ग्रामोफ़ोन। कभी पीतल के हंडे, परातें, सुराहीदान तो कभी बारहसिंगे की सींगे। जब वे बिक कर जा रही होतीं, तब भी हम ऐसी निर्लिप्तता जताते जैसे इन सारी की सारी बेज़रूरत चीज़ों ने बेवजह की जगह घेर रखी थी। हम सब झटपट सफाई कर डालते। जगह और ज़्यादा खाली दिखाई देने लगती। अगले दिन हमारी फीसों का भरा जाना या बिजली के बिल का अदा होना तो महज एक संयोग है, ऐसा हम अपने आपको कई-कई बार प्रबोधते।

आज पैंतीस-चालीस वर्षों बाद भी कभी-कभी खिड़की, बालकनी से सड़क की तरफ देखते हुए लगता है, सुबरन कबाड़ी हमारा हारमोनियम और शीशम का पालना सिर पर उठाये चला जा रहा है और मैं तार पर फँसी पतंग देखने के बहाने आख़िरी बार उन्हें देखे जा रही हूँ।

उस हारमोनियम पर बाबूजी, कभी-कभार अपनी छोटी-सी डायरी खोल, राग पीलू या अल्हैया बिलावल गाया करते थे। साहित्य-संगीत के मर्मज्ञ थे। सरकारी कामकाज के बीच-बीच में शेरों-शायरी भी चलती रहती। शौकिया लिखते थे। तरन्नुम से दून कर गाते थे। बुलंद आवाज़ में। शांत, अनुशासित घर में डूबती भरी-भरी-सी आवाज़।

उठो हिंदवालों! हुआ है सवेरा... इस तरह की बहुत-सी ग़ज़लें आज़ादी मिलने के बाद उन्होंने लिखी थी। मातहतों के बीच फाइलें निपटाने के बीच भी कभी बाहरी बैठक से उनकी ताज़ा-तरीन ग़ज़ल गूँज जाती- ये फहरे हिंद से लेकर, अटल कैलास तक फहरे, जिएँ तो 'वीर' सर पे, और मरें तो लाश पर फहरे। 'वीर' (वीर प्रताप सिंह) उनका तख़ल्लुस था। राष्ट्रध्वज को समर्पित उनकी ये पंक्तियाँ मुझे सगर्व रोमांचित कर जाती हैं, अभी भी। मदमस्त होकर शेर सुनाते या गाते तो रग-रग में एक रवानगी-सी दौड़ जाती। बहुत छोटे थे हम सब।

हाथ का लिखा कुछ भी सहेज कर नहीं रख पाये। जो कुछ है, सुना-सुनाया ही। मज़े-मज़े की तुकबंदियाँ भी करते, हम सारी बेटियों को चिढ़ाते। ख़ूब हँसी मसखरी, रूठना-मनाना होता, लेकिन उसके बाद जैसे एक की क्लास ख़त्म। एकदम गंभीर और अनुशासित।

सुनती हूँ, कोई भी ऊर्जा कभी नष्ट नहीं होती। सिर्फ परिवर्तित होती जाती है। शताब्दियों पहले की ध्वनियाँ भी, ध्वनितरंगों में परिवर्तित हो, वायु-मंडल में व्याप्त होंगी ही होंगी। तब शायद राग पीलू और अल्हैया बिलावल की वे धुनें, हारमोनियम पर निकाले पिता के तन्मय स्वर भी चारों ओर की अदृश्य ध्वनितरंगों में व्याप्त होगी न!

बारहवीं तक आते-आते मेरी उदासी, एकांत की तलाश बढ़ गई थी। अब तक दो बड़ी बहनें ससुराल में थीं, दो छोटे-भाई-बहन घर में। बीच में मैं और माँ। एक तरह से घर में छोटी बहन, भाई और माँ के बीच की कड़ी भी मैं थी। थी कुछ नहीं पर अनजाने अपने आपको माँ की अभिभावक-सी महसूस करती। एक असहाय, अक्षम अभिभावक। मेरे और माँ के बीच सारा संवाद मौन में ही चलता। ब्याही बेटियाँ, जानने-समझने पर भी ज़्यादा कुछ कर पाने या कैसी भी मदद पहुँचाने में असमर्थ थीं। शेष किसी के भी सामने हमें मुँह खोलने की पूरी मनाही थी। हम खाली थे, लेकिन पर्व त्योहारों पर ब्याही बेटियों के ससुराल भेजी जानेवाली सौगातों की रस्म का निर्वाह माँ भरपूर करतीं। सारा समाज, नया कुटुंब उनकी बेटियों को सम्मान दे, दया की भीख नहीं। विचित्र आत्मघाती व्यापार चला रही थी माँ।

बारहवीं में प्रथम श्रेणी मिली। मेरिट की छात्रवृत्ति भी। 'आज' की 'बाल-संसद' से अलग 'दादा' (स्व. श्री मोहनलाल गुप्त, हास्यव्यंग्यकार) मेरी कहानियाँ, कविताएँ और लेख 'आज' के साप्ताहिक, साहित्य-परिशिष्ट में प्रकाशित करने लगे थे। रचनाओं के पीछे लिखा मेरा पता देखा, तो मुझे अपने घर बुलाया, सिर्फ पैदल, पाँच मिनट की दूरी पर थे। घर में चारों तरफ बसी किताबों की ओर दिखाकर प्रोत्साहित किया, 'मन चाहे जितनी ले जाओ, पढ़ो ! रचनाएँ यहीं घर पर सुबह मेरे कार्यालय जाने से पहले दे जाया करो, सिर्फ दांपत्य-कुंठाओं पर कहाँ तक लिखा जाएगा और हाँ, 'निराला' बनने की ज़रूरत नहीं।' मेरी कलम आजन्म ऋणी रहेगी, उस शुरूआती सहारे के लिए। व्यक्तित्व भी वैसा ही शालीन। उनकी पत्नी भी भरपूर ममता और सहानुभूति देतीं। पास बिठाकर दु:ख-सुख पूछतीं। यद्यपि कभी कुछ मिनटों से ज़्यादा रुकी नहीं उनके घर।

छात्रवृत्ति के पैसे मिलते, 'आज' से दस रुपये का मनीऑर्डर आता, तो एक रुपया डाकिये को देने के बाद नौ रुपये पूजा की चौकी पर विराजते माँ के भगवानों के सुपुर्द कर देती। माँ के अनवरत चलते हवन में सचमुच ही चुटकी भर समिधा।

पढ़े, पढ़ाये जाने वाले महान् रचनाकारों में, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का तुक के

प्रति अतिरिक्त आग्रह असहाय हो उठता कभी-कभी मेरे लिए। (तब 'उस समय' के साथ रचनाओं को जोड़ कर देखने और उनका मूल्यांकन करने की तमीज़ नहीं थीं...) लेकिन 'साकेत' में कैकेयी का अन्तर्द्वंद्व मेरा अत्यंत प्रिय काव्यांश था, है और सीधी-सादी होने पर भी, 'सोने का संसार मिला मिट्टी में मेरा, इसमें भी भगवान्! भेद कुछ होगा तेरा!' जैसी पंक्तियाँ जीवन और नियति के प्रति एक निस्पृह तटस्थता को बल देती थी। 'दादा' कहते, तो मेरी 'निराला' की विक्षिप्तता मुझे उस छोटी उम्र में स्वीकार नहीं थी। कवि कमज़ोर होगा, तो शब्द सामर्थ्य का प्रतीक 'राम की शक्ति पूजा' जैसी कविता के आराधक कहाँ जाएँगे? दुरुहता और क्लिष्टता, उस समय भी साहित्य के लिए हानिप्रद ही ज़्यादा लगती, लेकिन इसके प्रतिकूल, संस्कृत तत्सम शब्दों की सरलता के बावजूद प्रसाद का गद्य, पद्य दोनों अपने लालित्य में डुबो लेता।

शायद साहित्य, कला, संगीत की मर्मज्ञता की अनमोल विरासतें ही थीं, जिन्होंने हमें उन गाढ़े, घुटनभरे तकलीफ-देह दिनों में भी जिलाए रखा, हमें जीवन और जिज्ञासा दी। बिना आह किये मज़बूती से टिके रहने और मुस्कराते हुए झेल ले जाने की कूवत। बेरौनकी और मायूसियाँ हमें रास न आतीं। परस्पर हास्यविनोद और चिढ़ने-चिढ़ाने की गुंजाइशें हमारे बीच हमेशा रहतीं। ख़ुद अपनी ग़लतियाँ स्वीकारने और ख़ुद पर ठठाकर हँसने की एक बहुत स्वस्थ परंपरा हमारे परिवार में कायम थी। शायद इसीलिए आज तक जितना हास्य-व्यंग्य लिखा, उसका तैंतीस प्रतिशत आलंबन-उद्दीपन निखालिस अपने ही गोदाम का। वह तो भला हो हिन्दी साहित्य का, कि इसकी सोहबत में रहते-रहते अब हँसने-हँसाने की कुटेवों से काफी कुछ निजात मिल चुकी है।

एम.ए. प्राइवेट किया। किसी तरह द्वितीय श्रेणी की उम्मीद थी, लेकिन जब उनसठ प्रतिशत मिले, तो मुझसे ज़्यादा माँ को लोगों ने पीएँच.डी. के लिए उकसाया। हमारे संदर्भ में हमसे कहीं-कहीं ज़्यादा पागलपने की हद तक महत्त्वाकांक्षी माँ थी। पता नहीं इसे महत्त्वाकांक्षा कहना ठीक होगा या बच्चों से जुड़े सुख, बच्चों का सुख। बह गई। मेरे पीछे पड़ गईं। थोड़ी-सी पहचान के बल पर विश्वविद्यालय के प्रवक्ता डॉक्टर बच्चन सिंह ने भी प्रोत्साहित किया, स्वयं अपने निर्देशन में भी लेने के लिए आश्वस्त कर दिया, तो हिम्मत बढ़ी। कई लोगों ने यह भी दिलासा दिया कि प्राइवेट छात्रा रहीं, तो क्या हुआ। अंक अच्छे आए हैं, छात्रवृत्ति भी बड़ी न सही, छोटी तो मिल ही जाएगी। काम रुकेगा नहीं।

अभी तक मुझे जीवन में नियति और परिस्थितियाँ ही थकाती, बिराती आई थीं, लेकिन छात्रवृत्ति के प्रसंग में पहली बार किसी खलनायक से साक्षात्कार हुआ, हिन्दी विभाग के अध्यक्ष। वे अकारण मुझसे प्रारंभ से ही, एकदम बराबरी की सी खार खाए बैठे रहते। मैं हतप्रभ अवाक् थी।

लोगों ने मेरे ऊपर कहे 'अकारण' को जातिवादी कारणों की संज्ञा दे रखी थी, लेकिन मैं इस सबसे अलग अपने निर्देशक के आत्मीय निर्देशन में अपना काम करने की ठान चुकी थी, मैं अब भी मानती हूँ कि उनके उस विस्मित कर देनेवालों क्रोधी, दंभी आचरण के पीछे अवश्य कोई कुंठाजनित कारण था, व्यक्ति कभी बुरा नहीं होता, स्थितियाँ बनाती हैं उसे बुरा... लेकिन मई की वह जलती, झुलसती दोपहरी में कभी नहीं भूल सकती, जब विश्वविद्यालय ऑफ़िस के अपने कक्ष में विभागाध्यक्ष ने दहाड़कर, मुझे मिल चुकी छात्रवृत्ति के अनुमति-पत्र पर, सिर्फ इसलिए हस्ताक्षर करने से मना कर दिया था, क्योंकि उनके द्वारा संस्तुति किये गए शोधछात्र की छात्रवृत्ति नहीं स्वीकृत हुई थी।

और अब निरुपाय में, स्वीकृत छात्रवृत्ति का लिफाफा हाथ में लिये, अपने निदेशक के कहने पर, उत्तप्त दोपहर गर्मी के थपेड़े खाती पैदल सेंट्रल ऑफ़िस में रजिस्ट्रार के पास जा रही थी। पता नहीं चेहरा पसीने से ज़्यादा तर था या आँसुओं से। पता नहीं, अंधड़ बाहर ज़्यादा था, या अंदर। एक ख़ौफ़, दहशत और आक्रोश भरी लाचारी, सौ रुपये महीने का सहारा एक दंभी व्यक्ति की निरर्थक हठवादिता की वजह से छीना जा रहा था और कोई कुछ कर नहीं पा रहा था। कोई था भी कौन? निश्चित मियाद के अंदर विभागाध्यक्ष के हस्ताक्षर के साथ वह फार्म जमा न हो पाने की स्थिति में छात्रवृत्ति मिलने का प्रश्न ही नहीं था।

किसी तरह अपना छितरा-बितरा साहस और सारी ऊर्जा समेटकर रजिस्ट्रार ऑफ़िस में घुसी थी और रजिस्ट्रार के सामने मेज़ पर अपना फार्म रखकर कह गई, 'सर! यह काग़ज़ मैं आपको वापस करने आई हूँ, मेरे लिए इसका कोई अर्थ नहीं रह गया है।' आश्चर्य! उन्होंने सहृदय आवाज़ में मुझे आश्वस्त किया। बताया कि विभागाध्यक्ष बिना बात के अड़े बैठे हैं, जबकि उनके छात्र को भी छात्रवृत्ति स्वीकृत हो गई है। सचमुच उसके बाद ही अध्यक्ष ने मेरे फार्म पर हस्ताक्षर किये। और अंततः, चालीस की जगह सौ रुपये वाली छात्रवृत्ति मुझे मिली। चमत्कारों, संयोगों की बड़ी विलक्षण भूमिका रही है, मेरे जीवन में लेकिन आश्चर्य है कि विश्वास हमेशा अपने कर्म और आस्थाओं पर ही रहा।

कर्म के साथ कर्म-स्थलियों के ध्रुवांतों ने, बदलते परिवेशों ने अनजाने समृद्ध किया है, मेरे लेखन को। दूर गाँव की पगडंडियों से नगर, क़स्बों की संकरी गलियों, सड़कों से लेकर महानगरों तक के राजमार्गों की दूरियाँ तय की हैं मेरी क़लम ने मेरे साथ-साथ। बदहाल निम्न और निम्नमध्यवर्ग की लाचारियाँ जितनी अपने हिस्से में आईं, वे 'अग्निपंखी' और 'दीक्षांत' में तद्रूप हुईं, तो उच्चवर्गीय अभिजात्य से जुड़े अनुभव, अहसास और संवेदनाएँ 'मेरे संधिपत्र', 'यामिनी-कथा' और अन्यान्य कहानियों में विपन्नता की निरीह निरुपायता के साथ समृद्ध, संपन्न, खेलते-खाते जीवन के बीचोंबीच भी बैठ कर देखा कि दुःख-दुःख होते हैं, वे संपन्न और विपन्न नहीं हुआ करते। उन्हें बड़ा और छोटा बताना क़लम की नादानी है।

000

बेड नंबर 20

मंजुश्री

दस दिन पहले जब मैं यहाँ उन्हें भर्ती कराने के लिए लाया था, तब कतई नहीं सोचा था कि यह उनकी अंतिम यात्रा की शुरूआत हो रही है। कुछ सालों से उनकी तबीयत ख़राब चल रही थी। एक तो बुढ़ापा उस पर बी. पी., घुटने में दर्द के अलावा उनकी दोनों किडनियों ने भी काम करना बंद कर दिया था, पिछले तीन सालों से वे किडनी ट्रांसप्लांट के लिए कतार में थीं। कतार में लगा हर मरीज़ बड़ी बेसब्री से डोनर का इंतज़ार कर रहा होता है। जीवन की विडंबना देखिए कि एक ज़िंदगी बचाने के लिए या तो किसी की मौत का इंतज़ार किया जाए जो अंगदान कर जाए या कोई अपनी ज़िंदगी दाँव पर लगा कर अपनी एक किडनी दे दे। मेरी और विनीता दोनों की किडनी मैच नहीं हुई। शुरूआत में स्थिति इतनी ख़राब नहीं थी। हफ्ते में एक बार डॉयलेसिस होती थी फिर धीरे-धीरे हफ्ते में दो बार और अब तो हर दूसरे दिन डॉयलेसिस होती है। पहले कुछ दिनों घर पर ही डॉयलेसिस की व्यवस्था कर ली थी, पर अब तो अस्पताल में ही आना पड़ता है। कॉम्प्लीकेशन्स भी बहुत हैं। एक बार अस्पताल आने-जाने में कुल मिलाकर चार-पाँच घंटे लग जाते हैं। इसके साथ कभी-कभी इंन्फैक्शन भी हो जाता है, तब डॉक्टर के पास और समय लगता है। मुझे और विनीता दोनों को सुबह जल्दी ही ऑफ़िस के लिए निकलना पड़ता है और हर दूसरे दिन छुट्टी भी नहीं ली जा सकती। इसलिए पूरे दिन के लिए एक नर्स रख ली थी, जो उन्हें टैक्सी से डॉयलेसिस के लिए अस्पताल लाती ले जाती थी और उसके रहने से उनके अकेलेपन की समस्या भी दूर हो गई थी। इस सब दौड़ा-भागी के बावजूद उन्होंने कभी कोई शिकायत नहीं की, वे काफी खुश रहतीं।

व्हीलचेयर पर बैठी-बैठी वे घर के काम-काज में भरसक विनीता का हाथ बँटाती रहतीं, उन्हें लगता था कि इससे उनका मन लगा रहता है और उनकी प्रासंगिकता भी बनी रहे। उनका सोचना था कि घर में चौबीसों घंटे बेकार बैठे-बैठे वे और अधिक बीमार हो जाएँगी। वे घर के किसी कोने में क़ैद नहीं होना चाहती थीं। अपनी तरफ से पूरी तरह सामान्य रहने की कोशिश करतीं और घर में भागते-दौड़ते बच्चों के बीच वे अपनी परेशानी भूल जातीं। अपनी बीमारियों को लेकर अगर कभी डिप्रेशन में आ भी जाता, तो यह स्थिति बहुत देर तक न रहती बल्कि हम सबको ढाढ़स बँधाती और अपनी पूजा-अर्चना में मन लगातीं। हमारे पड़ोसियों से भी उनकी अच्छी बनती थी। रोज़ ही दुआ-सलाम होती थी। हमारा अगल-बगल के घरों में आना-जाना भी था। इस बार डॉयलेसिस के बाद जब वे अस्पताल से वापस लौटीं, तो थोड़ी देर बाद उनको बुखार और थकान सी महसूस होने लगी और शाम तक तबियत ज़्यादा बिगड़ने लगी। सीने में भारीपन लगने लगा तो चिंता हुई; क्योंकि नई बीमारी करोना की काफी चर्चा हो रही थी, जिसके बारे में चार-पाँच महीने से देश-विदेश भर में डर फैला हुआ था और उसके बारे में अभी बहुत कुछ सही-सही मालूम नहीं था।

टी. वी. और अख़बारों के द्वारा लोगों को दूरी बनाए रखने, सैनीटाइज़र का इस्तेमाल करने, मास्क पहनने और घर में रहने की हिदायतें दी जाने लगी थीं, साथ ही अफवाहों का बाज़ार भी गर्म था। बीच-बीच में लॉकडाउन लगने से लोगों की रोज़मर्रा की ज़िंदगी में काफी परेशानियाँ

मंजुश्री
ए-10, बसेरा, दिन क्वॉरी रोड, देवनार,
मुंबई-400088
मोबाइल- 9819162949
ईमेल- kathabimb@gmail.com

पैदा होने लगी थीं। करोना का इतना ख़ौफ़ था उसी के चलते तुरंत चैकअप कराया गया और उनमें करोना की पुष्टि हो गई। सारे एहतियात बरतने के बाद भी वे न जाने कहाँ, कैसे संक्रमित हो गईं। अस्पताल में ज़रूर बहुत से लोगों के संपर्क में आती थीं, हालाँकि वे और नर्स दोनों मास्क लगाये रहती थीं। अस्पताल के कर्मचारी भी मास्क लगाये रहते। शायद बुढ़ापा, बीमारियों और उस पर डॉयलेसिस की मरीज़ होने के कारण उनकी रोग-प्रतिरोधक क्षमता काफी कम थी जिसकी वजह से संक्रमित हो गईं। अब तो हमारी परेशानियों का जो सिलसिला शुरू हुआ उसका तो कहना ही क्या! उनको तो तुरंत अस्पताल में भर्ती कराने का निर्णय लिया गया। इसके अलावा घर के सभी सदस्यों, नर्स, घर में काम करने वाले लोगों के अलावा उनके संपर्क में आए अड़ोसी-पड़ोसी भी जाँच के घेरे में आ गए। देखते ही देखते सब अपने-अपने घरों में बंद हो गए और लोगों के बीच एक निहायत ख़ामोश सन्नाटा पसर गया। आपस में मिलना-जुलना बंद होते ही अकेलेपन का एहसास बढ़ने लगा। सबके चेहरे पर एक अनजाना-सा भय दिखाई देने लगा और हम सब डरे-सहमे से अपनी-अपनी रिपोर्ट्स का इंतज़ार करने लगे। यह इंतज़ार बड़ा ही कष्टकर और तनाव भरा था। तीन दिनों बाद जब रिपोर्ट आई तो गनीमत रही कि किसी और के संक्रमित होने की ख़बर नहीं थी। सबने राहत की साँस ली। शन्नो दीदी माँ के बारे में सुनकर अलग परेशान हो गईं। वे लोग अपने बेटे मोहित के पास लंदन गए थे। लॉकडाउन की वजह से वहीं अटक गए, वहाँ भी करोना की वजह से बुरा हाल था। आने की कोई गुंजाइश नहीं थी, सभी फ्लाइट्स कैंसिल थीं।

उन्हें जब अस्पताल में भर्ती कराने की बारी आई तब बीमारी की व्यापक भयावहता का सही एहसास हुआ। बहुत से अस्पतालों में बेड ही खाली नहीं थे। सब अस्पतालों में करोना के मरीज़ लिये भी नहीं जा रहे थे, पूरे दिन इधर-उधर भटकने के बाद उन्हें इस अस्पताल में भर्ती कराया हालाँकि आई. सी. यू. में वेटिंग थी। इस अस्पताल में एक विंग विशेष रूप से करोना मरीज़ों के इलाज के लिए आरक्षित कर दिया गया था। अस्पताल के दूसरी तरफ सामान्य ओ. पी. डी. चल रहा था हालाँकि उस तरफ सामान्य दिनों की तुलना में भीड़ बहुत कम थी। इमरजेंसी वाले लोग ही अस्पताल आ रहे थे, ज़्यादातर लोग मरीज़ों की भीड़-भाड़ में संक्रमण के डर से छोटी-मोटी बीमारियों के लिए अस्पताल आने से कतरा रहे थे। अस्पताल के इस तरफ का तो नज़ारा ही अलग था। चारों तरफ भीड़, परेशान हलकान डॉक्टर्स और मरीज़ के रिश्तेदारों की हालत देखते ही बनती थी। वैसे तो अस्पतालों का माहौल उदासी लिये हुए होता है पर यहाँ सामान्य अस्पतालों की अपेक्षा माहौल में एक अलग ही डरावना-सा मौत का साया महसूस हो रहा था, या यों कहें कि मन में बैठे अनजाने डर के कारण ऐसा लग रहा था। मेरे जैसे न जाने कितने लोग उम्मीद और नाउम्मीद के बीच झूलते हताश अस्पताल के परिसर में मास्क लगाये खड़े थे।

बाहर कॉरीडोर में ही कोने के एक बड़े से कमरे में मरीज़ों की जाँच-पड़ताल करने के बाद उन्हें अंदर लिया जा रहा था। जिनके लक्षण गंभीर नहीं थे उन्हें एक तरफ एक हफ्ते या पंद्रह दिनों के लिए अलग क्वारेंटीन के लिए और जो गंभीर अवस्था में थे उन्हें अलग आई. सी. यू में भेजा जा रहा था। कितने लोग बेड न मिल पाने के कारण परेशान थे, एक अस्पताल से दूसरे अस्पताल के चक्कर काट रहे थे। कइयों की हालत बहुत ख़राब थी। ऑक्सीजन सिलेंडर्स और वेंटीलेटर्स की कमी की चर्चा हो रही थी। यह तो इलाज के लिए सबसे ज़रूरी है क्योंकि करोना का असर सबसे पहले फेफड़ों पर ही होने के कारण मरीज को साँस लेने में तकलीफ होने लगती है, परेशान लोग इसी वजह से कर्मचारियों से बहस कर रहे थे। कुछ ख़ुद ही ऑक्सीजन सिलेंडर्स के इंतज़ाम में भागदौड़ कर रहे थे। ज़रूरत से ज़्यादा भीड़ होने के कारण चारों ओर अफरा-तफरी मची हुई थी। मरीज़ और उनके परिजन तो परेशान थे ही, डॉक्टर्स और बाकी कर्मचारियों का भी बुरा हाल था। सिर से पाँव तक सफेद पी. पी. ई. किट में लैस डॉक्टर्स, नर्सेज़ परेशान मरीज़ों और उनके रिश्तेदारों को सँभाल रहे थे। कितने कर्मचारी तो कई दिनों से घर ही नहीं गए थे। मैं सोच रहा था कि ज़िंदगी और मौत के बीच झूलते, बड़ी संख्या में दम तोड़ते मरीज़ों को देख कर उन पर क्या बीतती होगी, अपने घर परिवार की चिंता के अलावा ख़ुद किसी भी समय बीमारी की चपेट में आ जाने की तलवार भी लटकती रहती है।

एक तरफ एक महिला किसी से फ़ोन पर बात करते-करते ज़ोर-ज़ोर से रो रही थी। उसकी और उसके पति की करोना रिपोर्ट पॉज़िटिव आई थी और उसके दस साल के बच्चे की निगेटिव, जिसकी वजह से उन दोनों को अस्पताल में भर्ती होना ज़रूरी था और बच्चे को घर में क्वारिण्टीन रहना था। उसके पति को तो आई. सी. यू. में भर्ती कर दिया गया था उनकी तबीयत ज़्यादा ख़राब थी। पहले उसके पति का किसी दूसरे अस्पताल में वायरल फीवर का इलाज चल रहा था और वह दिन में उनके पास अस्पताल में रहती थी। दो तीन दिनों के बाद भी पति की तबियत ठीक न होने पर दोबारा जाँच में उसके पति को करोना निकल आया और उसका भी टेस्ट हुआ जो पॉज़िटिव आया। एक तरफ पति की नाज़ुक हालत दूसरी तरफ घर में बच्चा बिल्कुल अकेला। शायद पड़ोसियों से मिन्नत कर रही थी, उसकी रो-रो कर सूजी आँखें और घबराया पसीने से तर-बतर चेहरा देख कर लग रहा था कि पड़ोसी संक्रमण के डर से आना-कानी कर रहे थे। उनकी भी क्या ग़लती इस बीमारी की दहशत ने सबको सहमा दिया है। हर कोई बस अपने बारे में ही सोचने लगा है। दस साल के बच्चे को घर में अकेला छोड़े जाने पर उसका रो-रोकर बुरा हाल था, क्या करेगा कैसे करेगा। घर के तीनों सदस्य अलग-अलग अपनी-अपनी परेशानियों में घिरे हुए। उसके जैसे न जाने कितने लोग इस बीमारी के अलावा किन-किन आर्थिक, मानसिक परेशानियों से जूझ रहे होंगे।

संक्रमण के डर से अस्पताल के अंदर मरीज़ के साथ परिजनों को जाने की मनाही

थी। कुछ लोग अंदर जाने की ज़िद कर रहे थे। ढीले-ढाले सफेद पी. पी. ई. किट पहने चेहरे पर मास्क और शील्ड लगाये इधर से उधर जाते डॉक्टर्स और नर्सों को देखकर कलेजे में अजीब भयमिश्रित ठंडी जकड़न महसूस होने लगी। अस्पताल की खिड़कियों से अंदर दिखते वार्ड की नीली-सफेद रोशनी में सफेद लबादों में दिखते डॉक्टर्स, नर्सेज़ ऐसे लग रहे थे मानों बादलों में किसी दूसरे लोक के वासियों की सफेद आकृतियाँ तैर रही हों जिनका न चेहरा दिखता था, न आवाज़ ठीक से सुनाई देती थी। अपनी पहचान भूले हुए हिलते-डुलते रोबोट जैसे, जो अभी तक केवल टी. वी. के पर्दे पर ही देखी थीं। चेहरे पर पहनी शील्ड के पीछे से दिखती आँखों में झाँकना भी कठिन लग रहा था। जिधर नज़र दौड़ाओ मास्क, दस्ताने, पी. पी. ई. किट्स में सिर से पाँव तक पूरी तरह सील मानव आकृतियाँ, जिन्हें देख कर दहशत-सी हो रही थी। मास्क तो सभी मरीज़ों ने भी पहन रखे थे। एक को दूसरे से अलग पहचानना भी मुश्किल था। सब कितना विचित्र और मशीनी सा लग रहा था।

हम सब को जीवन भर सांत्वना देने वाली वर्षों से अपनी बीमारियों से जूझती हिम्मती, हँसती मुस्कराती मेरी माँ अस्पताल के कॉरीडोर में व्हीलचेयर पर मास्क लगाकर बैठी चारों ओर के माहौल से घबराई हुई ऐसी निरीह गीली आँखों से मुझे देख रही थीं जैसे उन्हें पूर्वानुमान हो गया हो कि यह उनकी अंतिम विदा है। उन्हें ही नहीं मुझे ख़ुद ऐसा महसूस हो रहा था जैसे हम एक ऐसे ब्लैक होल की तरफ खिंचे चले जा रहे हैं जहाँ से निकलना कठिन है। मैंने भी पूरा ताम-झाम पहन रखा था, सोच रहा था शायद इसे पहन कर अंदर जा सकूँगा। उसकी वजह से थोड़ी ही देर में मेरी हालत ख़राब होने लगी। ऐसा लग रहा था कि दम घुटा जा रहा है तब एहसास हुआ कि डॉक्टर्स और नर्सेज़ की क्या हालत होती होगी पूरे समय इस खोल में क़ैद रह कर। माँ को लेकर मैं अकेला ही अस्पताल आया था। वे बच्चों का नाम ले लेकर कुछ कहना चाह रही थीं। शायद एक बार उन्हें देखने की इच्छा जाहिर कर रही थीं। तभी सारी कागज़ी कार्यवाही पूरी हो गई और उन्हें अंदर ले जाने की तैयारी होने लगी। उन्होंने कस कर मेरा हाथ थाम लिया जबकि मैंने दस्ताने पहने हुए थे तब भी उनके हाथ का वह आख़िरी ठंडा स्पर्श आज भी मुझे सिहरा जाता है।

मेरे हाथ पर अपना हाथ फेरते हुए बोलीं...'देख गिरीश जानती हूँ कि तू मुझे लेकर बहुत परेशान है मेरी चिंता मत करना बेटा। तुझे क्या लग रहा है कि मैं डर रही हूँ। नहीं पगले मैं डर नहीं रही हूँ। अस्पताल आने की तो मेरी आदत है न, और फिर इतने लोग हैं। अकेली कहाँ हूँ मैं। बस विनीता और बच्चों से मिल लेती एक बार... ख़ैर बच्चों को मेरा प्यार देना, अपना ख़याल रखना। शन्नो को.....' और मेरे हाथ को चूम लिया।

मैं छूटते ही बोला.... 'यह सब क्या बात कर रही हो माँ ! दस दिनों की ही तो बात है। तुम्हारा डॉयलेसिस का चक्कर नहीं होता तो घर पर ही हम तुम्हें क्वारिण्टीन कर देते, यहाँ आना ही नहीं पड़ता। शन्नो दीदी को फ़ोन कर दिया है, लॉकडाउन की वजह से सब फ्लाइट्स कैंसिल हैं।'

'जानती हूँ....एक बात बताऊँ...बचपन में तू डॉक्टर और इंजेक्शन से इतना डरता था कि दूर से उनके क्लीनिक की गली देखकर रोने लगता था। अब देखो कितना बड़ा हो गया है कि माँ को तसल्ली दे रहा है। शन्नो का ध्यान रखना बेटा, जल्दी टेंशन में आ जाती है।' उनकी आँखें भर आईं।

'हाँ माँ, तुम यह सब क्या सोच रही हो? यहाँ डॉक्टर्स की देखरेख में रहोगी तो अच्छा रहेगा। बिल्कुल ठीक होकर आओगी।' मैंने उनके हाथ को होंठ से लगाते हुए कहा, मेरा भी गला भर आया था।

तभी एक वार्ड ब्वाय उन्हें ले जाने के लिए अस्पताल की व्हीलचेयर लेकर आ गया। उस पर बैठकर अंदर जाते हुए एक बार पलट कर देखती उनकी नज़रों को देख कर मेरा कलेजा बैठने लगा। लगा उन्हें वापस खींच लूँ बंद होते दरवाज़े के पीछे से।

एक बार वे जो अंदर गईं तो फिर चेहरा ही नहीं देख पाया मैं। कैसी बेबसी और जकड़न सी महसूस हो रही है छाती में। बार-बार उनकी उदास नम आँखें सामने आ जाती हैं। अस्पताल से उन्हें डर नहीं लगता था, क्योंकि अस्पताल तो वह पहले भी हर दूसरे दिन जाती ही थीं। जो एक रूटीन हो गया था और डॉक्टर्स, नर्सेज़ भी जानने-पहचानने लगे थे। पिछले तीन सालों से अस्पताल आते-आते वहाँ लोगों से एक नाता-सा जुड़ गया था। सबसे दुआ-सलाम भी होती थी, यदि किसी दिन कोई मरीज़ या नर्स न दिखाई दे तो वो ख़ुद उसका हाल-चाल पूछ लेतीं। डॉक्टर नर्सेज़ तो अलग, नियमित आने वाले मरीज़ों से भी पहचान हो गई थी और एक दूसरे की ख़बर रखते थे। यहाँ से वहाँ आते-जाते वार्ड ब्वाय और आयाएँ भी पूछ लेते...'माँजी कैसी हैं", और वे खुश हो जातीं। ऐसा लगता जैसे अस्पताल आकर उनका अकेलापन कम हो जाता था। लेकिन यहाँ इस अस्पताल में आते ही उनके दिल में एक अनजाना-सा डर बैठने लगा था। शायद आगत की भनक लग गई थी।

डॉयलेसिस के दौरान नर्सेज़ की मुस्कराती आँखें और हाथों पर थपथपाहट का हल्का स्पर्श तसल्ली देता। डॉक्टर्स भी उनके कंधे पर हाथ रखकर पूछते.. 'माँ जी कैसी हैं आप? घबराइए नहीं आप कतार में काफी आगे आ गई हैं, जल्दी ही कोई डोनर मिलने की उम्मीद है, सब ठीक हो जाएगा...' और वे उनके दोनों हाथ अपने हाथों में पकड़ कर थपथपा कर आशीष देतीं 'खुश रहो बेटा।'

वे हमेशा मुझसे कहतीं 'डॉक्टर्स, नर्सेज़ बहुत अच्छे हैं बेटा। मेरी आधी बीमारी तो उनसे बात करके ही ठीक हो जाती है। मुझसे ही नहीं, सभी मरीज़ों से कितनी अच्छी तरह बात करते हैं। यह तो मुझे भी मालूम है कि जो होना है वह तो होगा ही।' ख़ासतौर पर डॉ. पाटकर की बहुत तारीफ करती थीं कि 'जब वे मरीज़ों का हाथ अपने हाथ में लेकर मुस्करा कर हाल पूछते हैं तो लगता है कि अपनी छुअन से बीमारी को बाहर खींच लेंगे। सच बेटा डॉक्टर्स भगवान् होते हैं।'

पिछले कुछ महीनों से इस अस्पताल में भी सब लोग मास्क और दस्ताने पहनने लगे थे। साफ-सफाई और सतर्कता बढ़ गई थी। नई

बीमारी करोना की चर्चा होने लगी थी। जितने मुँह उतनी बातें, शुरू में बीमारी की गंभीरता का अनुमान नहीं था। लेकिन अब तो हालत यह हो गई है कि जिधर नज़र दौड़ाओ हर तरफ मास्क पहने लोगों का रेला-सा बहता दिखाई देता है। हँसते-मुस्कराते चेहरे जैसे ग़ायब ही हो गए। लोगों को पहचानना मुश्किल हो गया है। माँ की बीमारी की ख़बर मिलते ही हमारी कॉलोनी में तो जैसे सन्नाटा छा गया। घर-घर जाकर चैकिंग शुरू हो गई। हमारी पूरी कॉलोनी को एकदम क्वारेंटीन कर दिया गया। किसी के भी आने-जाने पर एकदम रोक लग गई। नौकर-चाकर, ड्राइवर्स, माली, कुक सबका आना बंद होते ही लोगों की परेशानियाँ बढ़ गईं और इस समस्या ने हम सबको एक अलग अपराध-बोध से भर दिया, हालाँकि इसमें किसी का भी दोष नहीं था, फिर भी सबकी असुविधा की वजह हम ही थे, कर्फ्यू जैसा लग गया। जब माँ को अस्पताल में भर्ती करवाने पहुँचे तब सच्चाई का सामना हुआ।

हाल-फिलहाल उन्हें बड़े से वार्ड में बाकी मरीज़ों से थोड़ी दूरी पर आख़िरी बेड पर रखा गया था, क्योंकि उन्हें करोना के इलाज के साथ-साथ डॉयलेसिस की भी ज़रूरत थी। आई. सी. यू. में बेड खाली नहीं था। डॉयलेसिस पेशेंट होने के कारण उनकी हालत और नाज़ुक थी और इन्फेक्शन का ख़तरा भी ज़्यादा था.. एक दिन बाद उनकी डॉयलेसिस भी होनी थी। मुझे बहुत चिंता हो रही थी पर कुछ किया नहीं जा सकता था। सब डॉक्टर्स के भरोसे पर था वे भी हर संभव कोशिश कर रहे थे। मैं किसी प्राइवेट अस्पताल के लिए भी कोशिश कर रहा था लेकिन किसी दूसरे अस्पताल में इस बीमारी के मरीज़ नहीं लिये जा रहे थे, इसके अलावा माँ को डॉयलेसिस की भी ज़रूरत थी जो हर जगह नहीं होती। संक्रमण के डर से मरीज़ के अलावा किसी और को वार्ड में जाने की इजाज़त नहीं थी कि कोई अपने मरीज़ को सांत्वना दे सके। माँ को बेड नं. 20 एलॉट हुआ...अब वे अपने नाम से नहीं बेड नं. 20 वाली पेशेंट के नाम से पुकारी जाया करेंगी। आँखों के सामने उनका चेहरा घूम रहा है, भीड़ में गुम हो जाने के भय से डरा सहमा। मेरा संबल... मेरी माँ... मुझमें सहारा खोज रही थीं और मैं....

वहीं पड़ी एक कुर्सी पर निढाल सा बैठा मैं पिछले कुछ दिनों की घटनाओं के बारे में सोच रहा था कि तभी अस्पताल का चौकीदार और उसके साथ दो-तीन आदमी घबराये से भागते हुए डॉक्टर्स के केबिन में घुसकर बाहर की ओर इशारा करते हुए ज़ोर-ज़ोर से कुछ बताने लगे। देखते ही देखते डॉक्टर्स और नर्सेज़ बाहर की ओर भागे। उनके पीछे-पीछे मैं और अस्पताल में मौजूद बहुत से लोग भी भागे। चारों ओर हड़कंप मच गया। बाहर ज़मीन पर पड़ी लगभग पचास-पचपन साल के आदमी की लाश को घेरे भीड़ लगी हुई थी, जिसके सिर के पास काफी खून इकट्ठा हो गया था। पूछने पर मालूम पड़ा कि करोना के कारण डिप्रेशन में आकर उसने अस्पताल की चौथी मंज़िल की खिड़की से कूद कर जान दे दी। उसका सिर फट गया था और कई हड्डियाँ टूट गई थीं। कुछ दिनों से वह चीख-चिल्ला रहा था कभी रोने लगता। लॉकडाउन में उसकी नौकरी भी चली गई थी, साथ ही उसके संक्रमित होने के कारण उसे अस्पताल में भर्ती कर दिया गया था। घर-परिवार की चिंता और ऊपर से बीमारी.... के कारण तनाव, अकेलेपन, बेरोज़गारी, भुखमरी के कारण लोगों की हालत बहुत ख़राब थी। सुन कर मैं भीतर तक हिल गया। माँ का चेहरा आँखों के सामने घूम गया। चुपचाप घर लौट आया, माँ के बिना घर कितना सूना लग रहा है। बच्चे भी उदास हैं और हम दोनों के पास भी कहने को कुछ नहीं बचा है। सब अपने-अपने खोल में बंद हैं।

दो दिनों के बाद अस्पताल से फ़ोन आया कि उन्हें आई. सी. यू. में शिफ्ट कर दिया गया है, जानकर खुशी हुई। एक बार डॉयलेसिस भी हो चुकी थी। अभी थोड़ी तसल्ली हुई ही थी कि तीन दिन के बाद रात के ग्यारह बजे अस्पताल से फ़ोन आया कि उनकी तबियत ज़्यादा बिगड़ रही है, कुछ दवाइयाँ और इंजेक्शन्स चाहिए जिनके नाम उन्होंने फ़ोन पर बताए जो अस्पताल तुरंत पहुँचाने थे। कई दुकानों पर चक्कर लगाने के बाद दवाएँ जैसे-तैसे मिल गईं लेकिन इंजेक्शन्स आउट ऑफ स्टॉक थे। घंटों इधर-उधर भटकने के बाद एक दुकान से ब्लैक में तीन गुना अधिक पैसा देकर रात लगभग 3 बजे तक इंजेक्शन्स लेकर अस्पताल पहुँचा, जो बाहर काउंटर पर ही जमा कराने पड़े। अंदर जाने और डॉक्टर से मिलने की अनुमति नहीं मिली। बेड नं. और मरीज़ का नाम लिख कर दवाइयाँ और इंजेक्शन्स कॉउंटर पर दे तो दिये पर मन में यही शंका बनी रही कि पता नहीं दवा उन तक पहूँची भी या नहीं, काउंटर पर ही तो नहीं रखी रह गई।

आई. सी. यू में होने के बाद भी इतने मरीज़ों के बीच डॉयलेसिस और करोना दोनों के हाई रिस्क मरीज़ को जो आइसोलेशन और केयर मिलनी चाहिए थी वह संभव नहीं थी। डाक्टर्स और नर्सेज़ भी बेचारे रात-दिन लगे थे। हाइपरटेंशन और फेफड़ों में इनफेक्शन के कारण हालत बहुत नाज़ुक हो गई थी. पहले ही उनकी प्रतिरोधक शक्ति कमज़ोर थी।

दूसरे दिन मैंने फिर माँ को देखने की अनुमति माँगी पर बाहर से आने वाले किसी भी व्यक्ति के साथ और अधिक संक्रमण का ख़तरा होने के कारण वे किसी को भी अनुमति नहीं दे रहे थे। मेरी तरह कितने ही लोग अपने परिजनों को देखने के लिए परेशान थे। विनीता और बच्चे भी माँ से मिलना चाह रहे थे। घर पर बैठकर मैं फ़ोन पर ही हालचाल ले सकता था या अस्पताल से आने वाले फ़ोन का इंतज़ार। माँ की तबियत बहुत अधिक ख़राब हो रही थी। डॉक्टर्स ने जवाब दे दिया था। अगले दिन मेरे बहुत अधिक मिन्नत करने के बाद मुझे पी. पी. ई. किट पहन कर अस्पताल के अंदर जाने की अनुमति तो मिली पर आई. सी. यू. के अंदर जाकर पास से माँ को देखने की अनुमति नहीं मिली। माँ की नाज़ुक हालत और दूसरे मरीज़ों के संक्रमित होने का हवाला देते हुए मना कर दिया गया। आई. सी. यू. के मोटे काँच के पार्टीशन पर आँखों को हाथों से घेर कर मैं कमरे में लाइन से लगे सफेद चादर बिछे ऊँचे-ऊँचे बेड्स में लेटे मरीज़ों के बीच अपनी माँ को देखने की कोशिश कर रहा था।

ऑक्सीजन मास्क लगाये मरीज़ बिस्तर पर बिना हिले-डुले पड़े थे। कितनी ख़ामोशी थी, मौत का सा सन्नाटा.... दरवाज़ा बंद होने के कारण अंदर से कुछ सुनाई नहीं दे रहा था। दो नर्सें मरीज़ों के टैंपरेचर ले रहीं थीं। एक नर्स दवा की ट्रे लिये हर बेड के बगल में रखी मेज़ पर दवाएँ रख रही थी।

ट्यूब्स और मॉनीटर्स, ऑक्सीजन मास्क लगे होने के कारण दूर से किसी भी मरीज़ का चेहरा देख पाना कठिन था। नर्स ने सबसे आख़िरी बेड की ओर इशारा किया। वेंटीलेटर पर तो वह पहले से ही थीं और भी न जाने कितनी ट्यूब्स और मॉनीटर लगे थे, सलाइन भी लगा था। दो डॉक्टर उनका केस पेपर देख कर नर्स को कुछ बता रहे थे। उनके बेड को बाकी बेड्स से अलग करने के लिए बीच में एक पारदर्शी प्लास्टिक शीट का घेरा डाल दिया गया था जिसके कारण कुछ भी ठीक से देख पाना कठिन था। गले तक सफेद चादर से ढकी ऑक्सीजन मास्क लगाये माँ को देख कर कलेजा मुँह को आने लगा। मैं दौड़कर उनको बाँहों में भर लेना चाहता था। उनके हाथों को छूकर तसल्ली देना चाहता था।

डॉ. पाटकर के बारे में कही उनकी बातें ध्यान आ रही थीं। कहती थीं कि 'बेटा रोग कितना भी असाध्य क्यों न हो, डॉक्टर पाटकर कंधे पर हाथ रख कर जब मुस्कराते हुए हाल पूछते हैं, मरीज़ की बात धीरज से सुनते हैं, उसको समझाते हैं तो आधी बीमारी तो यूँ ही ठीक हो जाती है। मरीज़ डॉक्टर की आँखों में विश्वास देखना चाहता है। हल्के से हाथ थपथपा कर कहना कि घबराइए नहीं सब ठीक हो जाएगा, उनकी कठिन जीवन यात्रा में प्राणवायु फूँक देता है।'

डॉ. पाटकर की तारीफ़ करती थकती नहीं थीं कि वे हर मरीज़ के हाथ को अपने हाथ में लेकर जब उसका हाल पूछते हैं तो मानों अपने स्पर्श से सारी तकलीफ बाहर खींच लेते हैं। इलाज से ज़्यादा मरीज़ को उसकी तकलीफ और उसके भीतर छिपे डर को समझने वाला चाहिए। मैं माँ को छूना चाहता हूँ उनके हाथों को अपने हाथ में लेकर बहुत कुछ कहना चाहता हूँ। उनकी इस लड़ाई में उनका साथ देना चाहता हूँ। कहना चाहता हूँ कि माँ मुझे आज भी तुम्हारे सहारे की ज़रूरत है। मैं अपनी बेबसी पर फूट-फूटकर रोना चाहता हूँ कि इतने पास होकर भी मैं तुमसे इतनी दूर हूँ। काफी देर तक मैं यूँ ही आई. सी. यू. के पार्टीशन पर सिर रखे खड़ा रहा फिर घर आ गया। अगले दो दिन बेहद तनाव पूर्ण गुज़रे। मोबाइल की रिंग सुनते ही किसी अनिष्ट की आशंका से दिल धड़कने लगता। डॉक्टर्स ने पहले ही आगाह कर दिया था फिर भी मन के किसी कोने में चमत्कार की आशा थी। लॉकडाउन के कारण सब घर में ही हैं फिर भी घर में उदासी है। शाम की पूजा की घंटी की टुनुटन की कमी खल रही है।

बच्चे स्कूल जा चुके थे और हम दोनों सुबह-सुबह ऑफ़िस की तैयारी में थे तभी अस्पताल से सूचना आई कि माँ नहीं रहीं। इस खबर के लिए पहले से मन में तैयारी थी फिर भी कहीं कुछ एक झटके से चटक गया। विनीता घर पर ही रुकी और मैं तुरंत अस्पताल पहूँचा।

सिर से पाँव तक पी. पी. ई. किट में ढँका मैं आज फिर आई. सी. यू. के पार्टीशन के इस पार दूर खड़ा नम आँखों से माँ को धीरे से बेड से स्ट्रेचर पर रख कर कमरे से बाहर ले जाते देख रहा हूँ। दवाइयों के कारण सोये हुए से और मास्क लगाये ज़्यादातर मरीज़ों को या तो इस घटना के बारे में पता ही नहीं चला या फिर यह रोज़ घटने वाली इतनी सामान्य बात थी कि कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। एकबारगी लगा जैसे सब अपनी-अपनी बारी का इंतज़ार कर रहे हों। तुरंत सिर को झटका दिया यह मैं क्या सोच रहा हूँ। मौत के साये में भी हर व्यक्ति के साथ उसके अपने लोगों की कितनी आशाएँ बंधी हैं।

बाहर कॉरीडोर में एक कुर्सी पर बैठा आगे की फार्मेलिटीज़ पूरी होने की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। आँखों के सामने अपनी जुझारू माँ का मुस्कराता चेहरा है। शन्नो दीदी की शादी तय हो चुकी थी, तैयारियाँ ज़ोरों पर थीं और मेरा इंजीनियरिंग का पहला साल था। उस दिन पिता जी ऑफ़िस से लौटे तो काफी परेशान थे, उनकी अपने बॉस मि. बनर्जी से कुछ कहा-सुनी हो गई थी। रात काफी देर तक कमरे से माँ और उनकी बातों की आवाज़ें आती रहीं। मुश्किल से हमारी आँख लगी ही थी कि माँ के चीखने की आवाज़ आई। पिता जी को इतना ज़बरदस्त दिल का दौरा पड़ा कि अस्पताल ले जाने से पहले ही सब ख़त्म हो गया। वह समय याद करके रोंगटे खड़े हो जाते हैं। कैसे माँ ने उस कठिन समय में हिम्मत से बिखरी ज़िदगियों को सँभाला। वह तो बहुत बाद में मेरी नौकरी लगने के बाद माँ से पता चला कि पिताजी ने पहले ही घर के लिए लोन लिया हुआ था और मेरी पढ़ाई के लिए भी पी. एफ. से पैसा निकाला हुआ था। अब शन्नो दीदी की शादी के लिए लोन सेंक्शन करवाना चाह रहे थे उसी को लेकर मि. बनर्जी से कहा-सुनी हो गई थी, पर ऐसा कुछ हो जाएगा इसकी कल्पना तो मि. बनर्जी ने नहीं की थी। उन्होंने माँ को बहुत समझाया और नौकरी का ऑफर दिया। कम पढ़ी होने के कारण उन्हें क्लर्क की नौकरी ही मिल पाई। माँ ने मकान के ऊपरी हिस्से को किराये पर उठा दिया। पिता जी के मिले हुए थोड़े बहुत फंड और गहने बेच कर शन्नो दीदी की शादी निपटायी। मैंने भी दो ट्यूशन पकड़ लिये थे। नौकरी के साथ माँ ने पढ़ाई करके तीन-चार सालों में स्थिति सँभाली। तब तक मेरी भी पढ़ाई पूरी हो गई थी। इतने पर भी कभी हम दोनों भाई-बहन को परेशानियों का अभास नहीं होने दिया।

शाम के पाँच बजने वाले हैं तभी मैं अपने पास आकर रुकते स्ट्रेचर पर सफेद प्लास्टिक के बैग में सिर से पाँव तक सील एक मानव आकृति को देख रहा हूँ जिस पर बेड नं. 20 और सुनीता देवी शर्मा का टैग लटक रहा था। डॉक्टर के द्वारा थमाए कागज़ों को हाथ में पकड़े मैं फर्श पर स्ट्रैचर के पास घुटनों के बल बैठकर झर-झर बहते आँसुओं से धुँधला आई आँखों से उस बैग के भीतर बंद अपनी माँ के हँसते चेहरे को अपनी कल्पना में हल्के से छू कर तसल्ली देते हुए उनका हाथ पकड़कर घर ले जाना चाहता हूँ। प्लास्टिक बैग में उनका दम घुट रहा होगा बैग को खोलकर उन्हें बाँहों में भर लेना चाहता हूँ।

000

जूही के फूल

किशोर दिवसे

किशोर दिवसे
फ्लैट नंबर -206, अनंत वैभव सोसायटी,
डी एस के रानवारा रोड, चेलाराम
हॉस्पिटल के पास, बावधन,
411021, पुणे, महाराष्ट्र
ईमेल- Kishorediwase0@gmail.com

उस रोज़ देर तक झमाझम बारिश हुई थी। शुरूआत में माटी की सोंधी महक थी। बाद में छपाक-छपाक और आसमान जामुनी सा हो गया। जिस वक्त बरसात की पहली फुहारों ने मिट्टी से उड़ती धूल को सड़क किनारे ख़ामोश बैठने पर मजबूर कर दिया था, साकेत अपने स्कूल से घर की राह पर था। घर रवाना होने से पहले टिफिन बक्से में रखा नाश्ता जैसे ही ख़त्म किया बारिश की मोटी-मोटी बूँदें गिरने लगी थीं। पहले धीरे, फिर तेज़ी से ... टप टप... टप टप टप टप ...!

एक बार अपने कमरे में साकेत यूँ ही खड़ा था खिड़की के पास। ओम गार्डन्स स्थित अपार्टमेंट की खिड़की से निहारते हुए बारिश की बूँदों को। सामने वाले मैदान में लगे आम के पेड़ों, गुलाब की झाड़ियों, और जूही की बेलों को तर-ब-तर कर चुकी थीं। बारिश की बूँदों से जूही के फूल भी मानों सिर हिलाकर अपने खुश होने की हामी भर रहे थे। एक तरह से उस हरीतिमा में अद्‌भुत सम्मोहन था। वैसे भी प्रकृति की हर एक अदा में ज़बरदस्त चुम्बकीय आकर्षण होता है जिसका एहसास उसे उम्र के कुछ पड़ाव पार कर लेने के बाद हुआ था।

"साकेत...! इस तरह खिड़की के पास मत खड़े रहो...तुम्हें सर्दी लग जाएगी। अच्छे बेटे की तरह सो जाओ या फ़िर अपनी किताबें पढ़ो!" साकेत ने आवाज़ की तरफ मुड़कर देखा। सुरेखा मौसी कमरे के भीतर जा चुकी थी। अच्छे बच्चे की तरह साकेत अपने बिस्तर पर आ गया। उसने अपने दाहिने पैर को इस तरह बाएँ पैर पर मोड़कर रखा था कि बायाँ पैर ज़मीन छू रहा था और दूसरा अधर में लटक रहा था। साकेत का दाहिना पैर बाएँ से कुछ छोटा था।

"माँ क्या कर रही है सुरेखा मौसी!" साकेत ने पूछा। स्कूल से लौटने के बाद उसने अपनी माँ को देखा तक नहीं था। और देखता भी कैसे? ...जैसे ही वह स्कूल से घर आता सुरेखा मौसी ही दरवाज़ा खोलती। कन्धे पर लटकता स्कूल बैग और हाथ से पानी की बोतल अपने हाथों में ले लेती। फिर यूनिफॉर्म बदलकर घर की निकर और शर्ट पहनाती और खाना भी परोस देती। माँ तो बस अपने ही कमरे में दरवाज़ा बन्द कर अपने कैसेट और सीडी कलेक्शन से संगीत सुनती रहती।

"माँ अपने कमरे में है साकेत" सुरेखा मौसी ने अपनी चिर-परिचित मीठी आवाज़ में कहा और वह मेज़ पर रखा सामान तरतीब से सजाने लगी। बिखरे हुए कपड़े तह करने लगी थी। ... खिड़कियों के अधखुले परदे भी बन्द हो चुके थे।। वैसे भी साकेत यह समझने लगा था कि

सुरेखा मौसी के जवाब का अधूरा हिस्सा है, उस वक्त जब वह कहती, "माँ अपने कमरे में है साकेत!" तेरह बरस के साकेत ने अपना शरीर ढीला छोड़ दिया था। सुरेखा मौसी ने हमेशा की तरह उसके नंगे पैरों पर लिहाफ़ ओढ़ा दिया। हालाँकि उसे सर्दी का एहसास नहीं हो रहा था उसी तरह जैसे किशोरवयीन बच्चे सपनों भरी नींद में देहभान भुलाकर सोते हैं।

साकेत भी दो-तीन घंटे सोता रहा। नींद खुलने के बाद भी वह बिस्तर से उठा नहीं बल्कि खिड़की के परदे और चौखट के बीच की झिर्री से देर शाम का आकाश निहारता रहा। उसे मालूम था कि जल्द ही सुरेखा मौसी दूध भरा गिलास लेकर आएगी जिसमें तीन चम्मच कॉम्प्लान डला होगा।

"बेटा साकेत! अच्छी तरह सोये कि नहीं?" मौसी ने बिस्तर की बाजू वाले नन्हें तिपाए पर गिलास रखकर पूछा। सिर हिलाकर साकेत बिस्तर पर बैठ गया। बाहर आसमान में ढेर सारी स्याही घुल गई थी। लिहाज़ा सुरेखा मौसी ने परदे खींचे पर रोशनी कमरे में दाखिल नहीं हुई। कॉम्प्लान भरा गिलास लेकर साकेत ने अपना ध्यान दीगर कमरों से आती अजनबी आवाज़ों पर लगाकर एक ही लम्बी साँस में उसे खाली कर दिया। बाएँ हाथ से गिलास रखकर साकेत ने दाहिनी हथेली का पिछला हिस्सा मुँह पर रखा और होठों पर बनी सफ़ेद-भूरी लकीरें पोंछ दीं।

"माँ चली गई क्या?" अपने पावों से चादर हटाते हुए साकेत ने पूछा। सुरेखा मौसी ने हामी सूचक सिर हिलाया। यूँ तो संगीत के कार्यक्रमों का कोई समय नहीं हुआ करता। फ़िर भी क्रिसमस या दिवाली की छुट्टियों में या फ़िर गणेशोत्सव और दुर्गापूजा के दौरान संगीत निशाओं की धूम रहती है। वैसे साकेत को मालूम था कि उसकी स्टेज आर्टिस्ट माँ को भी उस रोज़ कार्यक्रम देना है। अमूमन हर माह की सात तारीख़ को संगीत कार्यक्रम रहता था। साकेत ने कभी अपनी माँ को संगीत का कार्यक्रम देते हुए नहीं देखा था। लोगों के मुँह से सुना ज़रूर कि वह एक बेहतरीन कलाकार हैं। जब भी कोई संगीत कार्यक्रम होता, कार्यक्रम के आयोजक गाड़ी भिजवाते थे। पिता जी दफ्तर से सीधे वहीं जाते और वापसी में माँ और पिताजी एक साथ लौटते। आम तौर पर संगीत कार्यक्रमों के दौरान वे देर से ही घर वापस आया करते थे; तब तक साकेत गहरी नींद में सो चुका होता। साकेत उठकर सीधे बाथरूम में जा घुसा।

जब तक वह फ्रेश होकर वहाँ से निकला सुरेखा मौसी बिस्तर ठीक-ठाक कर चुकी थी।

"चलो! अब जाकर कुछ देर टीवी देखो और फिर सो जाओ", मौसी का आदेश था।

साकेत के लिए शाम व रात का यही प्रोटोकाल तय था। ड्राइंग रूम के बाएँ कोने में खिड़की के नीचे टीवी की स्क्रीन पर उसका पसंदीदा डिस्कवरी चैनल आ रहा था। साकेत सोफे पर बैठकर सेंटर टेबल पर रखी मैगज़ीन के पन्ने यूँ ही पलटने लगा। उसके पिता जी जब भी घर में होते अख़बारों में सिर गड़ाए रहते। वैसे दफ्तर के काम काज के अलावा उन्हें कुछ भी पसन्द नहीं था।

"और...बेटा, कैसा रहा आज का दिन?" अमूमन रोज़ रात उसके पिताजी यही सवाल किया करते। हाँ ऽऽऽ हूँ ऽऽऽ कुछ ख़ास नहीं ऽऽऽ ठीक है ऽऽऽऽ जैसे तयशुदा शब्दों की औपचारिकता के बाद पिता जी माँ के पास शयनकक्ष में चले जाते। मिकी माउस और स्कूबी डू कार्टून चैनल में साकेत के प्रिय किरदार थे। उस दौरान किचन में सुरेखा मौसी की आवाज़ें, बर्तनों की खनखटाहट के सुर से ताल मिलाती हुई कानों में गूँजती रहती। वह समझ जाता कि मौसी खाना बना रही है। साकेत, मैगज़ीन को टेबल पर छोड़कर कमरे से बाहर निकल आया।

गलियारे से होकर कुछ आगे माँ के कमरे का दरवाज़ा बन्द था। अक्सर इस कमरे का दरवाज़ा बन्द ही रहता था। माँ यहाँ पर संगीत का रियाज़ करती और घंटों तक यही सिलसिला चला करता। रात को जब चारों ओर सन्नाटा छा जाता संगीत के सुर ही गूँजा करते। अमूमन हर शख्स नींद की बाहों में कैद होता। उन जूही के अनगिनत फूलों के सिवाय जो निशिगंध के साथ मस्ती में बतियाते हुए मादक महक में महका करते।

जवानी की दहलीज़ पर कदम रखने के बाद साकेत को यह बात समझ में आई कि माँ के लिये वह कमरा महज कमरा नहीं एक शरणस्थली भी थी। बन्द कमरे के दरवाज़े को देखकर साकेत को लगता मानों वह माँ को उससे शारीरिक तौर पर अलग करने वाली दीवार हो। शारीरिक रूप से ही क्यों हों, उस किवाड़ ने पूरी बदतमीज़ी से उसे माँ के मस्तिष्क के उस कोटर में भी दाखिल नहीं होने की साजिश रची थी जो शायद उसके लिए ही बना था।

ऐसा भी हो सकता है कि माँ ने ख़ुद ही अपने दिमाग में जगह न देने सुरों की दुनिया का पुख्ता ताना-बाना बुन लिया हो। कहीं ऐसा तो नहीं कि गीत-संगीत में गुथे स्वर या सरगम पिघलकर ऐसी दीवार बन जाते हों जो माँ के मस्तिष्क में साकेत से जुड़े विचारों के इलेक्ट्रॉन्स को भीतर न आने देती हो! वैसे, साकेत को यह भी याद नहीं कि कब या कैसे उसकी माँ को अपने ही बेटे को ज़िंदगी के हाशिये पर रखने की ज़रूरत आन पड़ी। यह एहसास कमोबेश ऐसा ही था जैसे किसी अंकुर को ज़मीन के भीतर से सिर उठाने आसमान या हवाओं के इशारे की मोहताज़गी नहीं होती।

जानकारियों के अलावा साकेत में ऐसा सिक्स्थ सेन्स विकसित हो चुका था जिसके तहत उसके विचारतंतु यथास्थिति को पूरी पारदर्शिता से स्वीकार करने लगे थे। बगैर कोई सवाल किये और स्वतः स्फूर्त भी। साकेत ने अपनी विकलांगता को पूरे आत्मविश्वास से स्वीकारा था। शायद उसका एक पैर छोटा होने से जुड़ी विकलांगता माँ के मन को भी सालती होगी ... नोंचती, खसोटती और लहूलुहान कर देती होगी।

"कहीं मेरी माँ इस अन्तर्द्वंद्व से बचने गीत-संगीत के चक्रव्यूह में तो नहीं खोई रहती!", उसका बाल मन सोचने लगा था, "माँ को कहीं अपने विकलांग बेटे के लिए कुछ न कर पाने का रंज तो नहीं होगा?" मैं शायद अपनी माँ का गाया हुआ बेसुरा गीत तो नहीं जो कभी सुरों से सज ही नहीं सकता! हो सकता है मेरी तरह अनेक लड़के-लड़कियाँ और बुज़ुर्ग भी

होंगे, शारीरिक-मानसिक विकलांगता के अभिशाप से जूझना जिनकी नियति बन चुका होगा!"

साकेत के कमरे के बाईं ओर बड़ा सा बैडरूम था जहाँ पर उसके माता-पिता सोया करते थे। जुगुप्सा के वशीभूत वह कमरे के भीतर गया। अँधेरे कमरे में स्विच टटोलकर उसे ऑन किया। सबसे पहले उसे एक बड़ा सा डबल बेड नज़र आया। बिस्तर के बाईं ओर फर्श पर जूही के फूल बिखरे पड़े थे। शायद उस वेणी से अलग छिटककर गिरे होंगे जो माँ ने अपने जूड़े में लगाकर रखी थी। जूही के फूलों से माँ को बेहद लगाव था। अक्सर कार्यक्रमों के दौरान वह बालों में वेणी लगाया ही करती।

फ़िर साकेत की नज़र पड़ी ड्रेसिंग टेबल की ओर। आईने में उसने अपने आपको देखा। पतली बाहें, छोटे-छोटे कटे हुए बाल ...बड़ी-बड़ी आँखें और शरीर कुछ दाहिनी ओर झुका हुआ। टेबल के ऊपर ही सौंदर्य प्रसाधन सजे हुए थे।

आईने में अपनी ही छवि को देखते हुए जैसे-जैसे कुछ पल बीतते गए एक अनचीन्ही झुरझुरी उसके बदन पर मकड़ी के सरकते पाँवों का एहसास कराने लगी। साकेत ख़ौफ़ज़दा होकर आईने से कुछ पीछे हटा। उसका प्रतिबिम्ब कुछ छोटा हुआ लेकिन ऐसा लगा मानों उसकी छवि और वह ख़ुद दोनों एक-दूसरे को घूर रहे हों। अब वह समझ गया था कि उसे क्या करना होगा।

साकेत पीछे मुड़ा और पैर की विकलांगता जितनी इजाज़त देती थी उतनी तेज़ी से वह कमरे के बाहर आ गया। गलियारे से होता हुआ बड़े दरवाज़े से वह बागीचे में दाखिल हो गया। हालाँकि वह नंगे पाँव था लेकिन पार करते वक्त मैदान की घास से पैर के तलुए भीगने का एहसास तक उसे नहीं हुआ। हरी घास का मैदान पार कर साकेत जूही की बेलों के पास आ गया। ड्राइंग रूम की खिड़की से छनकर आता रोशनी का आयताकार टुकड़ा जूही से गलबहियाँ कर रहा था। बारिश की पत्तियों का हरा रंग और भी चमका दिया था। जूही के फूल दूधिया चमक बिखेर रहे थे। बुद्ध की तरह समाधिस्थ खड़े बाँसों की कतार का ध्यान भी जूही की अठखेलियों से बेअसर था। भले ही जूही पीतवर्णी बाँसों से लिपटी हुई थी।

एक ही झटके में साकेत ने ज़मीन में गड़े बाँस को जूही सहित उखाड़ फेंका। अजनबी उन्माद के वशीभूत उसने उसी बाँस से जूही की सारी बेलें और झुरमुट तहस-नहस कर दिए। भीतर से सुरेखा मौसी उसे बुला रही थी। साकेत के माथे पर अनगिनत स्वेद बिन्दु चमकने लगे थे। छितराई हुई पूरी-अधूरी पत्तियों के कुचले हुए टुकड़े... बेलों और डंठलों के अवशेष ... बिखरे हुए दूधिया फूल जूही की ख़ूबसूरती को अन्तिम अलविदा कह रहे थे। फ़ोन पर घंटी अनवरत बज रही थी। ट्रिन... ट्रिन... ट्रिन ... ट्रिन ...! कुछ ही पल में सुरेखा मौसी वहाँ पहुँचने वाली थी... जूही का उजड़ा हुआ गुलशन पुष्परुदन गाथा का गवाह था।

साकेत ने योद्धा की तरह बाँस फेंक दिया। उसकी साँसें धौंकनी की तरह चल रही थीं और जिस्म थरथरा रहा था। उसे ऐसा लगा मानों उसका मस्तिष्क बारिश बरसा चुके रीते बादलों की तरह हो चुका है। बाहर सड़क पर मरकरी लाइट की रोशनी से परे चमगादड़ों का झुण्ड बदलते वर्तुल में एक-दूसरे का पीछा कर रहा था।!

"बेटा साकेत !" कहते हुए सुरेखा मौसी जब पहुँची वह अवाक् रह गई थी। सब कुछ देखकर वह अपने काम-काज में लग गई।

लौटकर साकेत ने देखा नन्हें स्टूल पर एक लिफाफा अधखुला पड़ा था। साकेत ने मजमून पढ़ा, "अंतरराष्ट्रीय विकलांग चेतना मंच की मेज़बानी में एक निशुल्क शिविर पुणे महाराष्ट्र में 7 नवंबर को आयोजित है। आपके पुत्र साकेत का पंजीयन हो चुका है। ऑपरेशन के बाद उसका पाँव पूरी तरह सामान्य हो जाएगा।" साकेत ने जूही के फूलों के मुर्दा जिस्म...बेलों और पत्तियों को देखा। उन पत्तियों और फूलों की पंखुड़ियों पर साकेत का कहीं अधूरा, पूरा चेहरा सम्राट अशोक की तरह नज़र आ रहा था।

000

फार्म IV

समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण (देखें नियम 8)।

पत्रिका का नाम : विभोम स्वर

1. प्रकाशन का स्थान : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

2. प्रकाशन की अवधि : त्रैमासिक

3. मुद्रक का नाम : ज़ुबैर शेख़।

पता : शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित।

पता : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर।

पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं। स्वामी का नाम : पंकज कुमार पुरोहित। पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।

दिनांक 21 मार्च 2022

हस्ताक्षर पंकज कुमार पुरोहित

(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

कथा-कहानी

राखीगढ़ी का आदमी

मुरारी गुप्ता

मुरारी गुप्ता
ई-37 ए, शंकर विहार, एयरपोर्ट के सामने,सवाई गैटोर, जयपुर- 302017
मोबाइल- 9414061219
ईमेल- murli4you@gmail.com

हिसार के बस स्टैंड से कुछ मील दूर बायपास पर हाँसी के रास्ते पर अमरूदों का ठेला लगाने वाला हीरालाल उस लंबे और अजीब से आदमी को देखकर हैरत में पड़ गया था। मोटरसाइकिल पर बैठे साढ़े सात फीट लम्बे, दुबले-पतले और अजीब से वेशभूषा वाले आदि मानव से दिखने वाले उस आदमी को देखकर हीरालाल एक बार तो सकपका गया था। लेकिन जब उस आदमी ने पास आकर हरियाणवी में हीरालाल से राखीगढ़ी का रास्ता पूछा कि- यो राह राखीगढ़ी जागा कै? तो हीरालाल को थोड़ी तसल्ली मिली। हालाँकि हीरालाल ने राखीगढ़ी के बारे में सुना ज़रूर था लेकिन वैसे ही जैसे हर छोटे-बड़े क़स्बों के बारे में बातें सुनी होती थी। हीरालाल से पहली बार किसी ने राखीगढ़ी का रास्ता पूछा था। उसने कुछ सोच समझकर हाँसी के हाइवे की ओर इशारा करते हुए कहा- मन्नै लागे यो राह राखीगढ़ी ई जागा। उस आदमी ने हीरालाल को लंबी और अजीब सी चौड़ी मुस्कान देकर वहीं छोड़ दिया। मगर हीरालाल के साथ काम करने वाला उसका नौकर अत्तरसिंह को उस आदमी की अजीब ढंग की मुस्कराहट ने साथ में खींच लिया था। अत्तरसिंह उस आदमी को देखकर हैरान और चकित था। अत्तरसिंह ने राखीगढ़ी के बारे में पढ़ रखा था। वह रहस्य और जासूसी उपन्यासों का शौकीन था। ऐसे उपन्यासों के अजीब करैक्टर उसे आकर्षित करते थे।

अत्तरसिंह के उपन्यासों सा कैरेक्टर उसने पहले इस इलाके में नहीं देखा था। उसकी अजीब सी मोटरसाइकिल पर लिखे हुए नंबर किसी अलग ही तरह की भाषा में थे। उसे समझ नहीं आ रहा था कि बाइक पर लिखे नंबर किस मुल्क के हैं। उसने सोचा कि यह कोई विदेशी है, जो रिसर्च करने के मकसद से आया है। लेकिन उसके हरियाणवी टोन ने उसे चकित कर दिया था।

उसका चेहरा, मोहरा, लम्बाई, चौड़ाई और हाव-भाव भी अजीब किस्म के थे। वह गले में पीतल का बड़ा सा हार पहने था। उस हार पर बीचों-बीच स्वास्तिक का बिलकुल स्पष्ट और त्रिशूल जैसी एक आकृति उभरी थी। उसके हाथों में ताँबे और पैरों में चाँदी के कड़े आपस में टकराकर अजीब सी आवाज़ निकाल रहे थे। उसके कानों के निचले सिरों पर दर्जनों कौड़ियों से बने कुंडल लटके हुए थे। उसके बालों की चोटी उसकी कमर तक लटकी थी। उसने सिर पर एक अजीब सा किसी धातु से बना हेयर बैंड पहन रखा था जिसके दोनों सिरों पर दो अजीब सी सींग जैसी आकृति निकली थीं। वह उससे उसके अजीब से हेयरबैंड के बारे में पूछने ही वाला था कि वह अपनी मोटरसाइकिल से रफ़ूचक्कर हो गया। जासूसी उपन्यासों के शौकीन अत्तरसिंह को उस व्यक्ति के बारे में कुछ और जानने की रुचि जागी। हीरालाल के लाख टोकने के बावजूद उसने भी तेज़ी से अपनी बाइक उठाई और उसका पीछा करना शुरू किया। लेकिन तब तक वह बहुत आगे निकल चुका था। अत्तरसिंह निराश नहीं हुआ। उसने पूरी स्पीड से मोटरसाइकिल को दौड़ाया। कुछ मील दूरी पर हाँसी रोड पर रामायण टोल प्लाज़ा को पार करने के बाद अचानक से उसे वह आदमी अपने आगे नज़र आया।

कुछ मील चलने के बाद उस आदमी की बाइक हाइवे से उतरकर नारनौंद के रास्ते पर चल पड़ी थी। शाम धीरे-धीरे घनी हो रही थी। अँधेरा घिरने से अत्तरसिंह थोड़ा घबराने लगा था। मगर पीछे नहीं लौटना चाहता था। वह उस आदमी के बारे में सोच ही रहा था कि उसे राखीगढ़ी के इतिहास के बारे में ख़याल आने लगे। अत्तरसिंह सोचने लगा कि वह आदमी इतनी रात में राखीगढ़ी क्यों जाना चाहता है। अत्तरसिंह ने सोचा कि वह कोई पुरातात्विक चीज़ों के बारे शोध करने वाला आदमी होगा। लेकिन फिर भी उस आदमी का रंग-ढंग, लंबाई और मुस्कराने का अंदाज़ उसकी उत्सुकता को बढ़ा रही थी। वह उससे बात करना चाहता था। तब ही उस आदमी को महसूस हुआ कि अत्तरसिंह उसका पीछा कर रहा है। उसने नज़र घुमाकर अत्तरसिंह को देखा और उसकी ओर मुस्कराया। उसने अपनी बाइक की स्पीड कम की। अब अत्तरसिंह का डर निकल चुका था। सड़क पर साइड में आने वाले खम्भों पर लगी ट्यूबलाइट में वह उस आदमी के चेहरे को साफ देख पा रहा था। लाइट से उसके सीने पर कंबलनुमा कपड़े पर पड़े हार में लगा सुनहरा स्वास्तिक और त्रिशूल के चिह्न चमक उठते थे।

अत्तरसिंह समझ नहीं पा रहा था कहाँ से बात शुरू करे। दोनों की बाइक धीरे-धीरे चलने लगी। इतनी कि दोनों आपस में एक दूसरे से बात कर सकते थे। अत्तरसिंह की असमंजस की हालात को देखकर वह आदमी हँसते हुए हरियाणवी में पूछने लगा- 'भाई अत्तरसिंह तन्नै भी राखीगढ़ी जाणा सै कै।' अत्तरसिंह उसके सवाल और उसके टोन को सुनकर थोड़ी देर के लिए सकपका गया। वह सोचने लगा कि उसे उसका नाम कैसे पता चला। उसका चेहरा-मोहरा और उसकी बोली आपस में बिलकुल भी मैच नहीं हो रही थी। थोड़ा सँभलते हुए अत्तरसिंह कहने लगा- जी। मेरा गाँव राखीगढ़ी से थोड़ा सा आगे है गुलकनी। वह आदमी हैरानी से पूछने लगा- भाई अत्तर यह गुलकनी कहाँ है? पहले तो राखीगढ़ी के पास ऐसा कोई शहर या क़स्बा नहीं था। दृशद्वती के उस पार के रहने वाले हो क्या? वह हँसने लगा।

अत्तरसिंह का दिमाग चकराने लगा था। वह सोचने लगा कि यह तो महाभारत और वैदिक कालखंड की नदियों की बात कर रहा है। ये नदियाँ तो हज़ारों साल पहले इस इलाके में बहा करती थीं। मगर अभी तो इस इलाके में कोई नदी-नाला नहीं है। लेकिन उसने उस आदमी के सवाल का कोई जबाव नहीं दिया। अत्तरसिंह ने पूछा- राखीगढ़ी में कहाँ रहते हो? कौन बिरादरी से हो। अत्तरसिंह के सवाल पर वह ज़ोर-ज़ोर से हँसने लगा। वह कहने लगा- भाई अत्तर मैं तो अड़तीस सौ साल बाद अपने घर जा रहा हूँ। पता नहीं मेरा घर बचा भी है या नहीं। वह आदमी मन ही मन खुश होते हुए कहने लगा- आसपास के हज़ारों मील दूर हमारे जैसी सभ्यता नहीं दिखेगी तुमको। हम लोग अपने घोड़ों पर बैठकर एक ही रात में दृशद्वति को पार करते हुए शतुद्री और पुरुष्णी पहूँच जाया करते थे। वह आदमी अपनी बात पूरी कर ज़ोर-ज़ोर से हँसने लगा।

इससे पहले अत्तरसिंह कुछ सोचता उस आदमी ने अत्तरसिंह से पूछा- 'भाई यह तो बता कि राखीगढ़ी तक पहुँचने के लिए इतनी रात में हमें दृशद्वति के तट पर नाव मिलेगी या नहीं?' उस व्यक्ति की लगातार अजीब बातों को सुनकर अत्तर का दिमाग़ चकराने लगा था।

अत्तरसिंह के दिमाग में सैकड़ों सवाल एक साथ घूमने लगे। वह सोचने लगा वह आदमी उसका नाम कैसे जानता है। अड़तीस सौ साल बाद घर जाने की बात उसके दिमाग़ को सुन्न कर रही थी। वह आदमी जिन नदियों का नाम ले रहा था उसे तो उसने सिर्फ वैदिक कहानियों में पढ़ा था या फिर बुज़ुर्गों की धार्मिक कहानियों में सुना था। लेकिन उसने ख़ुद को सहज रखते हुए उस आदमी से बातचीत का सिलसिला जारी रखा। उसने पूछा- तुम्हारे गले के हार में यह कैसा चिह्न है। इस इलाके में तो ऐसा चिह्न कोई नहीं पहनता। और तुम्हारा यह सिर पर लगा सींग जैसा मुकुट कुछ अजीब नहीं है? वह आदमी अत्तरसिंह के सवालों पर ऐसे मुस्कराया जैसे उससे कोई अजीब सा सवाल पूछ लिया हो। कहने लगा- 'कैसी बात करते हो तुम। यह तो हमारी सभ्यता की पहचान हैं। इनको नहीं पहनेंगे तो हमारे कुल देवता नाराज़ हो जाएँगे।'

अत्तरसिंह उसकी बातों पर अब हैरान होने की बजाय उसे मज़ाक में लेने लगा था। उसे लगा कि वह आदमी उसके साथ मज़ाक कर रहा है। अत्तरसिंह भी मज़ाक करते हुए कहने लगा- 'अब तुम बोलोगे कि हड़प्पा में तुम्हारी बुआ ब्याही थी और सिनौली में तुम्हारे मामा रहते थे।' उस आदमी ने अचानक अपनी बाइक रोकी। उसे अचानक इस तरह रुका देख अत्तर ने भी अपनी बाइक रोकी। अत्तरसिंह को लगा कि उसके मज़ाक से वह आदमी नाराज़ हो गया है। मगर वह आदमी अत्तरसिंह की बातों को सुनकर भावुक हो गया

था और अत्तरसिंह के कंधे थपथपाने लगा। वह आदमी कुछ याद करते हुए बुदबुदाने लगा- 'क्या शानदार तलवारें चलाते थे मेरे मातुल। उनके घोड़े बहुत ऊँचे होते थे। और रथ तो राखीगढ़ी से कई गुना बड़े होते थे। हमारे बाप-दादा उनसे बहुत ईर्ष्या करते थे। उनके घोड़े दृशद्वती को एक झटके में पार कर हमारे यहाँ राखीगढ़ी पहुँच जाते थे।'

उस आदमी की हैरतअंगेज़ बातों ने अत्तरसिंह के दिमाग में अजीब किस्म का रोमांच पैदा कर दिया था। अत्तरसिंह समझ नहीं पा रहा था कि वह हड़प्पा और राखीगढ़ी की सभ्यता में है या इक्कीसवीं सदी में खड़ा है। अत्तरसिंह उस आदमी को पागल समझने लगा। उसे लगा कि वह आदमी उसे बेवकूफ बना रहा है। मगर इसके बावजूद उसे भी उस आदमी की बातों में मज़ा आने लगा था। थोड़ी देर बाद उस आदमी ने अपने गले के हार के स्वास्तिक और त्रिशूल की आकृति को अपनी दोनों हथेलियों में रगड़ा और उससे निकली एक चिंगारी से बाइक को स्टार्ट कर दिया। अत्तरसिंह के लिए उसके जादुई अजूबे अब सामान्य हो गए थे।

थोड़ी ही देर में दोनों राखीगढ़ी के बाहर तालाब से लगते कच्चे रास्तों को पार कर पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग की साइट नंबर दो पर पहुँच गए थे। वर्तमान राखीगढ़ी गाँव के लिए यह साइट एक श्मशान घाट था। उस वक्त भी साइट पर एक चिता अभी ठंडी ही हो रही थी। साइट का बड़ा सा दरवाज़ा खटखटाने पर साइट के भीतर टीन और टैंट से बने एक दफ्तरनुमा कमरे से पुरातत्व विभाग का संरक्षण सहायक कुलतार सिंह बाहर निकला और बड़बड़ाते हुए दरवाज़ा खोला। इतनी रात बाइक पर बैठे उस लम्बे आदमी की वेश-भूषा और रंग-ढंग को देखकर कुलतार सिंह हैरत में पड़ गया। नींद ख़राब होने के कारण वह बड़बड़ा रहा था। उसका ध्यान अत्तरसिंह की ओर गया। उसने अत्तरसिंह की ओर मुख़ातिब होकर पूछा कि कौन हो तुम लोग और इस वक्त यहाँ क्यों आए हो? यह कोई वक़्त है यहाँ आने का? तुमको यहाँ का समय पता है न। सुबह दस से शाम छह बजे तक। अभी रात के बारह बज रहे हैं। उसने दरवाज़े के ऊपर लगी लाइट की ओर हाथ ऊँचाकर कलाई में बँधी घड़ी में वक़्त देखा। दोनों ख़ामोशी से कुलतार सिंह को सुन रहे थे।

कुलतार सिंह ने फिर से दोनों को फटकारते हुए कहा- अभी घर जाओ कल सुबह आना। कुलतार के ग़ुस्से को ठंडा करते हुए अत्तरसिंह ने उस आदमी की ओर इशारा कर बात बनाते हुए कहा- 'साहब, यह आदमी अपने शहर राखीगढ़ी आना चाहता था। मैं तो इसके साथ इसे यहाँ तक छोड़ने आ गया था। कुलतार ने हैरानी से पूछा- राखीगढ़ी में कौन सा शहर है भाई। इसी दौरान दोनों को बातचीत करता छोड़ वह आदमी दो नंबर साइट के बीचों-बीच उस संरक्षित जगह तक पहुँच गया था जहाँ पुरातात्विक सर्वेक्षण विभाग को उत्खनन में कई फीट लम्बा इंसानी कंकाल और कुछ निशानियाँ मिली थीं। उस साइट को सुरक्षित करने के लिए उसके चारों तरफ लोहे की कंटीली बाड़ लगाई गई थी। वह आदमी उस बाढ़ को लाँघकर उसके भीतर घुस गया था और उस जगह पर हाथ और पैरों से मिट्टी को खोदता हुआ चिल्लाने लगा।

अत्तरसिंह कुलतार के पास जाकर कहने लगा- 'जनाब मुझे तो यह कोई बहुरूपिया लगता है। यह आदमी कभी दृशद्वति नदी की बात करता था, कभी हड़प्पा तो कभी सिनौली की बात करता था। रास्ते में कह रहा था कि हम दृशद्वती नदी को कैसे पार करेंगे। मुझे तो यह सनकी आदमी लगता है। लेकिन इसके अजीबो-ग़रीब हाव-भाव और वेष-भूषा को देखकर और इसकी राखीगढ़ी में दिलचस्पी को जानकर मैं इसके पीछे चल दिया था। इसके गले के हार और सींग जैसे मुकुट को देखकर इस आदमी के बारे में जानने में मेरी दिलचस्पी बढ़ गई थी। कुलतार सिंह ने पूछा- 'क्या उसके सीने पर कोई स्वास्तिक या फिर त्रिशूल जैसी भी आकृति थी?' अत्तरसिंह ने हैरानी से पूछा- 'आप ऐसा क्यों पूछ रहे हो? लेकिन हाँ, उसके गले के हार में किसी अजीब सी धातु का बना स्वास्तिक और त्रिशूल जैसा बड़ा चिह्न था।' कुलतार सिंह संरक्षित साइट पर अजीब सी आवाज़ में चिल्लाते हुए मिट्टी को हाथों और पैरों से खोद रहे उस आदमी को देखकर घबराने लगा था। उसने अत्तरसिंह का हाथ पकड़ा और उसे तेज़ी से खींचते हुए साइट से थोड़ी दूर पर मौजूद पुरातात्विक सर्वेक्षण विभाग के म्यूज़ियम में संरक्षित उसी विशाल कंकाल के पास ले गया जो कुछ वर्षों पहले राखीगढ़ी की साइट से उत्खनन में निकला था और देश-दुनिया में चर्चा का विषय बना था।

अत्तरसिंह को उस साढ़े सात फीट लंबे लेटे हुए नर कंकाल के पास रखा धातु से बना स्वास्तिक चिह्न भी नज़र आया। कंकाल के चारों ओर दो सींगों वाले मुकुट और त्रिशूल जैसी कुछ आकृतियाँ भी नज़र आईं। दोनों ने एक दूसरे को देखा और तेज़ी से म्यूज़ियम की छत पर चढ़कर बड़ी टॉर्च के उजाले में दोनों ने साइट की ओर देखा। साइट से आ रही आवाज़ें बंद हो चुकी थी। टॉर्च की रोशनी से कुलतार सिंह ने कई बार पूरी साइट को चारों तरफ देखा। ख़ुद को राखीगढ़ी का रहने वाला, कहने वाला वह राखीगढ़ी आदमी वहाँ कहीं भी नहीं था।

000

लेखकों से अनुरोध

सभी सम्माननीय लेखकों से संपादक मंडल का विनम्र अनुरोध है कि पत्रिका में प्रकाशन हेतु केवल अपनी मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। वह रचनाएँ जो सोशल मीडिया के किसी मंच जैसे फ़ेसबुक, व्हाट्सएप आदि पर प्रकाशित हो चुकी हैं, उन्हें पत्रिका में प्रकाशन हेतु नहीं भेजें। इस प्रकार की रचनाओं को हम प्रकाशित नहीं करेंगे। साथ ही यह भी देखा गया है कि कुछ रचनाकार अपनी पूर्व में अन्य किसी पत्रिका में प्रकाशित रचनाएँ भी विभोम-स्वर में प्रकाशन के लिए भेज रहे हैं, इस प्रकार की रचनाएँ न भेजें। अपनी मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाएँ ही पत्रिका में प्रकाशन के लिए भेजें। आपका सहयोग हमें पत्रिका को और बेहतर बनाने में मदद करेगा, धन्यवाद।

-सादर संपादक मंडल

टूक-टूक कलेजा

हंसा दीप

हंसा दीप
22 फैरेल एवेन्यू, नॉर्थ यॉर्क, टोरंटो,
ओंटारियो M2R1C8 , कनाडा
मोबाइल- 001 647 213 1817
ईमेल- hansadeep8@gmail.com

सामान का आख़िरी कनस्तर ट्रक में जा चुका था। बच्चों को अपने सामान से भरे ट्रक के साथ निकलने की जल्दी थी। वे अपनी गाड़ी में बैठकर, बगैर हाथ हिलाए चले गए थे और मैं वहीं कुछ पलों तक खाली सड़क को ताकती, हाथ हिलाती खड़ी रह गई थी। जब इस बात का अहसास हुआ तो झेंपकर इधर-उधर देखने लगी कि मेरी इस हरकत को कहीं कोई पड़ोसी देख तो नहीं रहा!

खिसियाते हुए घर में कदम रखा तो उसी खामोशी ने मुझे झिंझोड़ दिया जिसे अपने पुराने वाले घर को छोड़ते हुए मैंने अपने भीतर क़ैद की थी। उन पलों को महसूस करने लगी जब अपने उस लाड़ले घर को छोड़कर मैं इस नए घर में आई थी। उसी घर को, जिसमें मैंने अपने जीवन के सबसे अच्छे बारह साल व्यतीत किए थे। माँ कहा करती थीं- "बारह साल बाद तो घूरे के दिन भी फिर जाते हैं।" न जाने किसके दिन फिरे थे, मेरे या घर के! मेरे दिन तो उस घर में बहुत अच्छे थे। शायद इसलिए मैं नई जगह आ गई थी ताकि उस घर के दिन फिर जाएँ! जो भी नया परिवार उसमें रहने के लिए आए वह उसे मुझसे अधिक समझे!

यह बात और थी कि मैंने उस घर की सार-सँभाल में अपनी जान फूँक दी थी। मन से सजाया-सँवारा था। कमरों की हर दीवार पर मेरे हाथों की चित्रकारी थी। हर बल्ब और फानूस की रौशनी मेरी आँखों ने पसंद की थी। मेरी कुर्सी, मेरी मेज़ और मेरा पलंग, ये सब मिलकर किसी पाँच सितारा होटल का अहसास देते थे। मैंने उस आशियाने पर बहुत प्यार लुटाया था और बदले में उसने भी मुझे बहुत कुछ दिया था। वहाँ रहते हुए मैंने नाम, पैसा और शोहरत सब कुछ कमाया। इतना सब कुछ पाने के बावजूद अचानक ऐसा क्या हुआ कि मैंने उसे छोड़ने का फैसला कर लिया! शायद मेरे परिवार के ख़यालों की दौड़ उसे पिछड़ा मानने लगी थी। हालाँकि उसका दिल बहुत बड़ा था, इतना बड़ा कि हम सब उसमें समा जाते थे। एक-एक करके ज़रूरतों की सूची बड़ी होती गई और घर की दीवारें छोटी होती गईं। सब कुछ बहुत 'छोटा' लगने लगा। इतना छोटा कि उस घर के लिए मेरी असीम चाहत, मेरे अपने दिलो-दिमाग से रेत की तरह फिसलती चली गई।

याद है मुझे, जब हम उस घर में आए थे तो मैं चहक-चहककर घर आए मेहमानों को उसकी ख़ास बातें बताती थी- "देखो, यहाँ से सीएन टावर दिखाई देता है; और पतझड़ के मौसम

की अनोखी छटा का तो कहना ही क्या! रंग-बिरंगे पत्तों से लदे, पेड़ों के झुरमुट, यहाँ से सुंदरतम दिखाई देते हैं। यहाँ का सूर्योदय किसी भी हिल स्टेशन को मात देने में सक्षम है। सिंदूरी बादलों से निकलता सूरज जब सामने, काँच की अट्टालिकाओं पर पड़कर परावर्तित होता है तो ये सारी इमारतें सुनहरी हो जाती हैं, सोने-सी जगमगातीं।"

बेचारे मेहमान! उन्हें ज़रूर लगता रहा होगा कि मैं किसी गाइड की तरह उन्हें अपना म्यूज़ियम दिखा रही हूँ। सच कहूँ तो वह छोटा-सा घर मेरे जीवन की यादों का संग्रहालय ही बन गया था। सबसे प्यारा और सबसे आरामदायक घर जिसने मेरी तमाम ऊर्जा को मेरे लेखन में जगह देने में कोताही नहीं बरती। सामने दिखाई देती झिलमिल रौशनियों के सैलाब में खोकर मैंने कई कहानियाँ लिखीं, उपन्यास लिखे। कई कक्षाएँ पढ़ायीं। कोविड में भी मुझे यहाँ से दिखाई देता, रौशनी से नहाता यह शहर कभी उदास नहीं लगा।

देखते ही देखते मैं उस घर की हर ईंट, हर तकलीफ से वाक़िफ़ हो चुकी थी। कभी कोई चीज़ टूटकर नीचे बिखरे, उसके पहले ही उस पर मेरी तेज़ नज़र पड़ जाती और मैं उसकी मरम्मत करवा देती। वह भी शायद मेरी थकान समझ लेता था। उस समय कहीं से गंदा नज़र न आता और मैं संतोष की साँस लेकर अच्छे से आराम कर लेती। हम एक दूसरे से इस कदर परिचित थे! फिर भी, मैं उसे छोड़कर यहाँ नए, बड़े घर में आ गई थी। सवेरे उठकर दुनिया देखने का मेरा वह जज़्बा इस नए मकान में कहीं दबकर रह गया था। यह है बहुत बड़ा, लेकिन ज़मीन पर, उस छोटे मकान की तरह सीना ताने ऊँचाई पर नहीं खड़ा है। छोटे लेकिन बड़े दिल वाले लोग मुझे हमेशा अच्छे लगे हैं। यही तो उस घर की ख़ास बात थी, उसका दिल।

हर सुबह उस उगते सूरज की लालिमा को निहारते हुए, मुट्ठी में जकड़कर अपने भीतर तक क़ैद किया है मैंने। उसकी नस-नस को जब मैं शब्दों में चित्रित करती तो घर वाले कहते- "तुम ईंटों से प्यार करती हो जो बेजान हैं। फर्श से बात करती हो जो ख़ामोश है।" लेकिन सच कहूँ तो मैंने उन सबको सुना है। घर का ज़र्रा-ज़र्रा मेरे हाथों का स्पर्श पहचानता था। जब-जब झाड़-पोंछकर साफ करती, तब-तब ऐसा लगता था जैसे वह घर हँसकर, बोलने लगा है।

उसी घर को छोड़ते हुए, अपने सामान को ठीक से ट्रक पर चढ़ाने की चिंता में मैं इतनी व्यस्त थी कि ठीक से अलविदा भी नहीं कह पाई थी। अपने उसी घर की चाबी किसी और को पकड़ाते हुए मेरा मन ज़रा भी नहीं पसीजा था बल्कि स्वयं को बहुत हल्का महसूस किया था मैंने, मानों किसी क़ैद से मुक्ति मिल गई हो। उस घर से चुप्पी साधे निकल गई थी मैं। घर उदास था, मुझे जाते हुए देख रहा था। इस उम्मीद में कि मैं उसे छोड़ते हुए आँखों को गीला होने से रोक नहीं पाऊँगी, पर उस समय मुझे ताला बंद करने, पेपर वर्क करने और ऐसी ही कई सारी चिंताओं ने घेर रखा था। मैं अपनी नई मंज़िल की ओर बढ़ते हुए, उस आपाधापी में सब कुछ भूल गई थी। मेरी सारी भावनाएँ इन दीवारों में समा गई थीं। मुझे इस तरह जाता देख उन पर उदासी छा गई थी। घर का हर कोना मेरा ध्यान खींचने की पुरज़ोर कोशिश कर रहा था जिसे मैंने कभी फूलों से, कभी फॉल के रंग-बिरंगे शो पीस से सजाया था। बाहर क़दम रखते ही मेरे हाथ में सीमेंट की एक परत गिरकर आ गई थी। मैं उस आलिंगन को समझ नहीं पाई थी और यह सोचा कि "अच्छा ही हुआ यहाँ से निकल लिए, इस घर के अस्थिपंजर ढीले हो रहे हैं। पुरानी तकनीक, आउट डेटेड।" मैंने उस परत को कचरे के डिब्बे में फेंक दिया और तेज़ी से ट्रक के साथ निकल गई थी।

आज जब बच्चों की तटस्थ आँखें, मेरी आँखों की गीली तहों से कुछ कहे बगैर ओझल हो गईं तो मुझे लग रहा है कि मेरा अपना शरीर सीमेंट जैसा मजबूत और ईंटों जैसा पक्का हो गया है। भट्टी की आँच में पकी वे ईंटें जो सारा बोझ अपने कंधों पर लेकर भी ताउम्र खामोश रहती हैं। मेरा हर अंग उस ख़ामोशी में जकड़-सा गया है। दिनभर चहकते, मेरे अगल-बगल मँडराते बच्चे, ज़रूरत पड़ने पर मुझमें पिता को पा लेते और माँ तो हर साँस के स्पंदन में उनके साथ ही होती। आज बच्चों का यह रूप अपने उन नन्हें बच्चों से अलग था जब वे स्कूल जाते हुए ममा को छोड़ने की तकलीफ अपनी आँखों से जता देते थे। बार-बार मुड़कर हाथ हिलाते रहते थे। मेरी हर मनोदशा को मुझसे पहले पहचान लेते थे। कुछ पढ़ने बैठती और चश्मा न मिलता तो तुरंत मेरे हाथ में लाकर थमा देते। आज उन्हीं दोनों बच्चों ने अपने अलग घरों में जाते हुए ममा को पलट कर देखा तक नहीं था।

मैंने बच्चों की सुविधा के लिए उस घर को छोड़ा था। अब बच्चों ने अपनी सुविधा के लिए मुझे छोड़ दिया। अचानक इतना 'बड़ा' घर भी 'छोटा' पड़ने लगा या फिर शायद मैं ही छोटी हो गई थी और बच्चों का कद बड़ा हो चला था। घर की अतिरिक्त चाबियाँ मुझे थमाकर बच्चों ने जैसे मुक्ति पा ली थी। पुरानेपन और छोटेपन से मुक्ति का अहसास! शायद मुझे छोड़ते हुए उन्हें भी उतनी ही जल्दी रही होगी। मेरा अस्तित्व उनके लिए उस मकान की तरह ही फौलादी था, भाव प्रूफ। उन्हें मेरे अस्थिपंजर ढीले होते दिख गए होंगे।

सूखे आँसुओं की चुभन से परे मेरा शरीर मुझे पहले से कहीं अधिक मज़बूत लगा। पक्की दीवारों से बना हुआ, मुझे किसी भी भावुकता के मौसम से मुक्त रखता हुआ। सीमेंट और कंक्रीट इस या उस मकान में नहीं, मेरे हाड़-माँस के भीतर कहीं गहरे तक समा गए हैं।

अपने बच्चों के लिए मैं भी एक मकान से ज़्यादा कुछ नहीं हूँ। ये खामोश दीवारें चीख-चीखकर मेरे अपने ही शब्द दोहरा रही हैं, "पुरानी तकनीक, आउट डेटेड।" मैंने भी इस सच को स्वीकार कर लिया है कि नई तकनीक में घर बोलते हैं, इंसान नहीं।

कान ज़रूर कुछ सुन रहे हैं, शायद नया घर ठहाके लगा रहा है या फिर इसमें पुराने घर की आवाज़ का अट्टहास शामिल है। बरस-दर-बरस, ममतामयी पलस्तर की परतों से ढँका मेरा कलेजा टूक-टूक हो गया था, जड़वत्।

000

फिर वापसी

प्रो. हर्षबाला शर्मा

गजाधर बाबू को डाकिए ने आवाज़ लगाई। लम्बी थकान के बाद आज गजाधर बाबू की नींद खुलने में ज़्यादा ही देर हो गई थी। वैसे भी रिटायरमेंट के बाद अब जल्दी क्या और देर क्या! राम-राम करते हुए गजाधर बाबू उठ बैठे! डाकिए ने दूसरी आवाज़ लगाई 'का हो गजाधर बाबू! उठे नाहीं अब तलक' गजाधर बाबू ने आगे बढ़कर तार ले लिया। तार खोला! ख़बर थी 'माँ नहीं रही' तार थामे हुए गजाधर बाबू अचल बैठे रह गए! बस एक आँसू उनकी हथेली पर आ गिरा। एक बार फिर से गजाधर बाबू ने सामान बाँध लिया। गनेशी को विदा देते हुए बोले 'आता हूँ' गनेशी की बिटिया की शादी की तारीख़ निकट ही थी, वरना गनेशी भी चलता। उसके कंधे पर हाथ रखकर गजाधर बाबू स्टेशन पर ट्रेन का इंतज़ार करने लगे।

पत्नी का ख़याल आते ही गजाधर बाबू के ख़यालात दो हिस्सों में बँट गए! एक तरफ दोपहर दो बजे गर्मी में भी उनके लिए गरम-गरम फुल्के बनाने वाली युवती तो दूसरी तरफ मुँह मोड़कर सो जाने वाली पत्नी मन में घूम गई। गजाधर बाबू कुछ सोच नहीं पाए। एक अजीब सा भिंचा हुआ आकार उनके चेहरे पर आकर चिपक गया।

घर पहुँचे तो नरेंद्र, बसंती और बहू के चेहरे उतने ही बेज़ार थे, जितने हो सकते थे। न माँ के जाने का कोई भाव, न पिता के आने की कोई आहट। गजाधर बाबू के सामने पत्नी की लाश पड़ी थी। क्रियाकर्म करके गजाधर बाबू सफेद धोती लपेटे उसी स्टोर रूम की चारपाई पर बैठ गए, जिसे उनके लिए कुछ महीने- दो महीने पहले डाला गया था। मर्तबान, अचार के डिब्बे बिखरे पड़े थे। बाहर से बर्तनों के खड़कने, बसंती के चहकने की, नरेंद्र की चाय की फरमाइश सुनाई दे रही थी। गजाधर बाबू माथे पर हाथ रखे लेट गए! कल ही लौट जाएँगे। सुहागवंती पत्नी को आग देने तो आना ही था। वैसे पत्नी का जीवन भरा पूरा रहा। उसे क्या कमी थी- बेटा, बहू, बेटी सबके साथ भरे पूरे परिवार में रही, अपने मन का जीवन जिया, बच्चों को बड़ा करने में लगी पत्नी माँ बन गई और उन्हें भूल गई। उन्हें क्या मिला? न बच्चों का प्यार, न पत्नी का स्नेह! वह तो भरी पूरी ज़िंदगी जीकर चल दी और गजाधर बाबू- पहले भी निपट अकेले और आज भी!

उनका मन कड़वाहट से भर गया। कल तक भी क्यों रुके वे? न तो पहले सुख न बाद में।

पर आज की रात तो काटनी ही थी। बहू धीमे से दरवाज़ा खटखटाकर चाय रखकर चली गई। खाली चाय! गनेशी होता तो गरम-गरम मट्ठी भी लाता। उन्होंने मन को समझाया 'बस आज की ही बात है'। उत्सुकतावश चारपाई के नीचे से थैला रखा देख उसे बाहर निकाल लिया। रात तो काटनी ही थी।

थैला खोलते ही अचार की गंध नथुनों में भर गई। पत्नी के हर सामान से अचार की गंध आती थी। और उसकी देह से? गजाधर बाबू को याद नहीं कि उसकी देह से कैसी गंध आती थी! शुरू-शुरू में वे उसे 'मोगरे की कली' कहते थे। तब उसकी देह से सचमुझ मोगरे की गंध आती थी। फिर पता नहीं वो गंध कहाँ चली गई। वे दिन कहाँ चले गए! थैले में उनकी शादी की तस्वीर और निमंत्रण कार्ड रखे हुए थे! ऊँची पगड़ी और नई बुशर्ट में गजाधर बाबू को अपना ही चेहरा अटपटा सा लगा। लंबे से घूँघट में 'वह' भी खड़ी थी। फ़ोटो पर तेल के निशान थे। निमंत्रण पत्र पर धुँधलाते अक्षरों में लिखा था-

'आयुष्मान गजाधर और आयुष्मति विमला के विवाह के अवसर पर आप सादर आमंत्रित

प्रो. हर्षबाला शर्मा
हिन्दी विभाग, इंद्रप्रस्थ कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय।
मोबाइल- 9868892661
ईमेल- ip.harshbala@gmail.com

है।'

निमंत्रण पत्र देखते हुए गजाधर बाबू 40 साल पीछे चले गए। 24-25 बरस के रहे होंगे तब! विमला शायद 15-16 बरस की होगी! विमला 8 वीं में पढ़ती थी उन दिनों। साल दो साल में गजाधर बाबू की नियुक्ति रेलवे में हो गई। विमला सास-ससुर की सेवा में लगी और गजाधर बाबू रेलवे की सेवा में। पत्नी का लजीला चेहरा और देह से उठती मोगरे की ख़ुश्बू उन्हें खींचकर घर ले आती। रात को एकांत में लिपटे पत्नी से पूछते 'ख़त लिखा करो ना! जब तुम नहीं होगी तो तुम्हारे ख़त से काम चला लेंगे' पत्नी लजा जाती, कुछ कह न पाती।

गजाधर का हर हफ्ते, पंद्रह दिन में आना ससुर जी की आँख से कहाँ बच पाया। बोले 'बचूआ दुल्हिन तो तुम्हारी ही है। न हो तो साथ ले जाओ। पर यह हर हफ्ता आना-जाना करोगे तो बचेगा क्या।' गजाधर पर मानों घड़ों पानी गिर गया। महीने-दो महीने पर आने लगे। जब आते, पत्नी का उदास चेहरा खिल उठता। दरवाज़े पर खड़ी उनकी राह तकती पत्नी उन्हें बेहद ख़ूबसूरत लगती। जाते हुए भी गली के मुहाने तक उसकी नज़र पीछा करती। गजाधर बाबू को उसकी निगाहें पीठ पर चिपकी दिखाई देती।

फिर वो दिन भी आया, जब पत्नी पेट से थी। लंबा सा घूँघट काढ़े, पेट में बबुआ को लिए पत्नी उनके पीछे-पीछे चली आई। वे कुछ साल कितने प्यारे थे! गजाधर बाबू दिन भर नौकरी करते। शाम को लौटते तो पत्नी दरवाज़े पर टकटकी लगाए उनका इंतज़ार करती नज़र आती। नरेंद्र बबुआ को गोद में लिए वे बैठते और पत्नी चाय-बिस्किट ले आती। इन दिनों बिस्किट का नया-नया रिवाज़ चला था-ग्लूकोज वाले। नरेंद्र बबुआ को चाय में भिगोकर वे खिलाते, तो बबुआ की खिलखिलाहट पत्नी की मुस्कान से मिलकर उनके मन पर छा जाती। वे चाय को सुड़क-सुड़क कर पीते। पत्नी उन्हें निहारती। गजाधर बाबू बबुआ से खेलने में लग जाते और पत्नी रात का खाना बनाने की तैयारी में! रात को बगल में सो रही पत्नी की देह अक्सर उन्हें बुलाती। ये दो- ढाई साल उनकी स्मृति के सबसे प्यारे बरस थे।

अचानक उनकी यादों की इस कथा में जैसे कुछ चुभ गया- थैले में काँच की टूटी चूड़ी पड़ी थी। हाथ में काँच चुभा तो उनकी सिसकी उभर आई। सिसकी दबाने को उँगली मुँह में डाल ली। यहाँ सुनने वाला कौन था! उन्हें फिर गनेशी की याद आ गई। थैले को खँगाला तो चार ख़त नीचे आ गिरे- तीनों पर उनका नाम और पता लिखा था पर किसी भी ख़त पर टिकट नहीं थी। हैरान होते हुए ख़त खोले। ये पत्नी ने उनके नाम लिखे थे।

पहली चिट्ठी

तारीख़ थी पर बरस नहीं।

1.2.....

चरण स्पर्श,

इतने बरस से माँ-बाबूजी, नरेंद्र के पास रहकर कुछ कहने का मन तो करता है पर कैसे और किससे कहूँ। आपसे मुझे कोई शिकायत नहीं। नरेंद्र 6 बरस का हो चला जी। ख़ूब दौड़ता है-स्कूल जाने लगा है। दोस्त भी बनाता है। कहता है- बाबूजी साथ क्यों नहीं रहते। सबके बाबूजी तो साथ ही रहते हैं। उसकी नन्ही सी मीठी आवाज़ में मेरा भी मन यही पूछने लगता है- हम साथ क्यों नहीं रहते। नहीं-नहीं, मेरा यह मतलब नहीं कि माँ-बाबूजी से कोई शिकायत है। बूढ़ा-बूढ़ी दोनों अब भगवद-भजन में लगे रहते हैं -अम्मा तो फिर थोड़ा बहुत बतियाती है, बाबूजी तो बोलते नहीं। कभी नरेंद्र से खेल लिए तो कभी बाहर घूम आए। रात को अम्मा जी के पैर दबाती हूँ तो आपकी बहुत याद ...। देह पिराती है, डोलती है, आपके पैर ही दबा देती। इधर 6 महीने से आप आए नहीं। जब पिछली बार आए थे तो मुझे दूसरा महीना लग गया था। अगले महीने दूसरा भी आ जाएगा। फिर साथ ले चलेंगे? अच्छा, एक कमरे में गुज़ारा नहीं कर सकते क्या हम? नहीं नहीं शिकायत नहीं है आपसे। बचपन में सपना देखती थी कि दूल्हा दुल्हन को छिपाकर भी अपने पास रखता है। डॉक्टरनी कहती है कि इस पूरे समय में पति के साथ रहने में सुख होता है। क्या जाने! काश साथ होते! अच्छा सुनो, आजकल आप विमली कहकर नहीं बुलाते!

जल्दी आना

आपकी विमली

गजाधर बाबू रुक न सके। बहू खाने को पूछने आई तो मना कर दिया। दूसरी चिट्ठी खोल ली।

दूसरी चिट्ठी

इस पर भी बरस नहीं लिखा था, बस तारीख थी। 1.3.....

नरेंद्र कल 17 का हो गया जी। उसके जन्मदिन पर भी नहीं आ सके आप। बसंती भी तो 11 वें लगी हुई है। कुछ भी नहीं सुनती, बस भैया के पीछे डोलती फिरती है। मैं भी तो बुढ़ा गई और देह भी। देह क्या सूखी, मन भी सूख गया लगता है। इस बार तो आपको आए बरस बीतने को है। लगता है ग्वालियर ज़्यादा ही भा गया आपको! नहीं नहीं शिकायत नहीं है आपसे। बस जब अपने बालों की सफेदी देखती हूँ, तो आपके बालों की सफेदी भी याद आ जाती है। मुझसे तो सात-आठ बरस बड़े हैं न! मन करता है आप आएँ तो अभी भी दरवाज़े की ओट में खड़ी रहूँ पर अब यह सुहाएगा भला! बेटा, बेटी मज़ाक उड़ाएँगे। दो कमरों के मकान में अब माँ- बाबूजी के जाने के बाद इतनी जगह दिखती है कि कभी-कभी मैं घबरा उठती हूँ। बसंती तो साथ ही सोती है पर नरेंद्र रात भर बत्ती जलाकर न जाने क्या करता है। पढ़ता ही होगा! इतनी तो मोटी-मोटी किताबें हैं पर मुझे कुछ समझ नहीं आता। रात 12 बजे आवाज़ लगाता है 'अम्मा चाय बना दो मोटी सी मलाई डालकर' फिर आपकी याद...। ऐसी ही चाय पसंद है न आपको! बस यह है कि अपने हाथ से चाय भी नहीं पिला पाती। जोड़ों का दर्द भी मरा बढ़े ही जा रहा है। अच्छा जाती हूँ, थोड़ा तेल मल लूँ।

ध्यान रखना

जल्दी आना

विमली

गजानन बाबू जड़ हो गए थे। तीसरा ख़त पढ़ने के लिए उन्हें बिजली जलानी होगी। कमरे में अँधेरा हो गया था। मोमबत्ती माँगने के लिए आवाज़ लगाई तो बसंती धीरे से मोमबत्ती पकड़ाकर सरक गई, 'कहीं बाबूजी फिर कुछ

माँगने लगे तो?'

तीसरी चिट्ठी

नरेंद्र की शादी हो गई, बहू आ गई। ज़रूरतें बढ़ गईं तो नौकर भी आ गया। बसंती भी कॉलेज जा रही है अब तो। आपकी बात गाहे-बगाहे होती है। पर अब तो आप आते ही नहीं। दिन महीने और साल में बदल गए, पता कहाँ लगा। शरीर भी बुढ़ा गया और मन भी। नरेंद्र ने मेरी चारपाई वह बाहर के स्टोर में डाल दी है। कहता है, जगह की ज़रूरत है। पूरा कमरा रखकर भी क्या करती। कहीं भी रह सकती हूँ। रसोई में मन लगा लिया है। नरेंद्र को भी मेरे ही हाथ के पकोड़े अच्छे लगते हैं। बस दो तीन घंटे लगे रहकर खड़े रहने से पैर थक जाते हैं। कभी लगता है, आप होते तो खिलाती। अब शिकायत क्या करनी। पर हो तो किससे करूँ? आपके पास तो गनेशी है न! मन का बनाता-खिलाता तो होगा! यहाँ इस बूढ़ी का कौन है! नाच-गाने, खेल-तमाशे से ही फुरसत किसे है। रसोई ही सँभाल रही हूँ। इस काया से ही कुछ काम हो जाए वरना तो बेकाम मान लेंगे सब!

जोड़ दुख रहे हैं, जाती हूँ, दवा लगा लूँ।

ध्यान रखना

अच्छा आना! जब आ सको! जल्दी क्या!

गजानन बाबू ने चौथी चिट्ठी भी खोल ली। यह चिट्ठी क्या तार भर ही था-

चौथी चिट्ठी

चरण स्पर्श,

10.1.......

आपकी चारपाई स्टोर रूम से निकाल दी है, जगह कम है। तबीयत ख़राब है। कुछ दिन की बात है, मेरी चारपाई भी स्टोर रूम से हट जाएगी। ठीक भी है, नरेंद्र के पास जगह हो जाएगी।

अपना ध्यान रखना।

विमली

गजानन बाबू सुन्न हो गए थे। बिना किसी से कुछ कहे, वे बैग उठाकर निकल गए। बादल घिर आए थे, बारिश शुरू हो गई थी। बाद में किसी देखने वाले ने कहा कि शायद गजानन बाबू रो रहे थे।

000

लघुकथा

दूर की छाँव

ज्ञानदेव मुकेश

बड़े साहब ने कामवाली के हाथ में दो हज़ार रुपये देते हुए कहा, "तुम्हारा बेटा अच्छे से इंजीनियरिंग पास कर गया। ये पैसे रख लो और आज उसका जन्मदिन पूरे धूमधाम से मनाना।"

कामवाली की आँखें कृतज्ञता से झुक गईं। उसने कहा, "मालिक, यह सब आपकी कृपा से संभव हुआ है। आपने एक पिता की तरह उसकी पढ़ाई में मदद की है। हमेशा उसे फीस और किताबों के पैसे दिये और अपना आशीर्वाद दिया है। वह आपको पिता ही नहीं, बल्कि देवतुल्य मानता है।"

इतना कहकर कामवाली चुप हो गई। बड़े साहब ने पूछा, "कुछ और कहना है ?"

कामवाली ने सकुचाते हुए कहा, "मालिक, बेटे का मन है कि आप भी उसके जन्मदिन में शरीक हों।"

इतना सुनते ही बड़े साहब गंभीर हो गए। वे अंदर गए और एक गिफ्ट का पैकेट ले आए। उन्होंने कामवाली को पैकेट देते हुए कहा, "यह अपने बेटे को दे देना। मेरा वहाँ आना संभव नहीं हो सकेगा।"

कामवाली उदास हो कर चली गई। अगली सुबह वह आई तो बेहद दुखी दिखाई दे रही थी। बड़े साहब ने पूछा, "तुम उदास क्यों हो ? कल सब ठीक रहा न ?"

कामवाली की आँखों से दो आँसू टपक पड़े। उसने कहा, "बेटे ने कल जन्मदिन नहीं मनाया।"

बड़े साहब ने आश्चर्य भरे तीखे स्वर में पूछा, "क्यों..?"

कामवाली ने कहा, "बेटे ने यह कहकर मना कर दिया कि मैंने तो बड़े साहब को अपना पिता माना। लेकिन जब तक वे भी मुझे अपना बेटा नहीं मानेंगे और मेरे घर नहीं आएँगे तब तक मैं अपना जन्मदिन नहीं मनाऊँगा।"

इतना कहकर कामवाली ने बड़े साहब के सामने गिफ्ट का पैकेट और दो हज़ार रुपये वापस रख दिए। बड़े साहब एकदम सकते में आ गए और बेहद गंभीर हो गए। उन्हें यह अफसोस होने लगा था कि उन्होंने उस बच्चे की इतनी ज़्यादा मदद करके शायद बहुत बड़ी ग़लती कर दी है।

000

ज्ञानदेव मुकेश, 301, साईं हार्मोनी अपार्टमेंट, अल्पना मार्किट के पास, न्यू पाटलिपुत्र कॉलोनी मेन रोड, पटना - 800013

मोबाइल- 9470200491

ईमेल- gyandevam@rediffmail.com

पारिजात की महक

ममता त्यागी

'शन्नो बिटिया कहाँ चली गई ? इधर आ ज़रा।'

'आई दादी ! बस गैस बंद करके आ रही हूँ, चाय चढ़ा रखी थी। पियोगी क्या ?'

'ले आ चल आधा कप, दो चम्मच चीनी और डाल देना।'

'पता नहीं कैसे यह फीका सा गरम पानी पी लेतीं हो चाय के नाम पर। हमसे न चलती तुम्हारी बिना दूध की, बिना चीनी की काली सी फीकी चाय।' दादी बड़बड़ा रही थीं।

'दादी भी न बस !' शन्नो को उनकी बात सुनकर हँसी आ गई।

'लो दादी, ख़ूब मीठी और ज़्यादा दूध वाली चाय पियो अब।'

'अब बताओ क्या कह रही थीं आप ?'

'अरे कुछ ना, सारा काम तो अच्छी तरह निपट गया बस एक काम रह गया।'

'वह क्या दादी?'

'अरे देख शादी ब्याह बड़े संजोग से होते हैं, और सही से निपट जाएँ तो मन को बड़ी तसल्ली हो जाती है।'

'यह तो सही कहा दादी आपने।'

'अब यह आख़िरी ब्याह था इस पीढ़ी का, अब तो कभी संजू के बच्चों के ही होंगे। सबका लेना-देना भी बहुत बढ़िया हो गया।'

'दादी आप ख़ुश हैं तो हम सब भी ख़ुश है।'

'अच्छा ज़रा यह बता, ब्याह होते ही हमारा संजू बहू को लेकर घूमने क्यों चल दिया? कल ही तो सारे मेहमान बिदा हुए, आज निकल लिया'

'दादी, आजकल सब बच्चे ऐसा ही करते हैं। एक दूसरे को समझने का समय मिल जाता है हनीमून के बहाने।'

'हमारे ज़माने में तो कोई हनीमून न होता था,तो क्या मैं और तेरे दादा जी समझे न एक दूसरे को?'

शालिनी हँसने लगी। 'अरे दादी, यह नए ज़माने की रीत है।'

'चल छोड़, यह बता तेरी अम्मा कहाँ है?'

'अम्मा तो पापा को दवा दे रही हैं। कुछ काम था क्या उनसे?'

'हाँ, उसने अभी तक खुसरों के लिए सीधा और कपड़े न निकाले। कभी भी आ जाएँगे बधाई देने, घर में लड़के का ब्याह हुआ है।'

'दादी, अभी भी खुसरे आते हैं क्या बधाई लेने?'

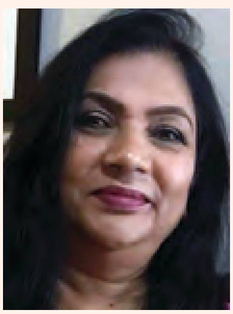

ममता त्यागी
411 ब्रायरली ड्राइव, एपेक्स -27523, नॉर्थ कैरोलाइना, यू एस ए
मोबाइल: 984-218-6178
ईमेल- mamtatyagi80@gmail.com

'तो और क्या ? तू तो बन गई पूरी विदेशी शादी के दस सालों में।'

'पूरे पाँच साल बाद आई है सात समंदर पार से वह भी भाई की शादी के बहाने। कुछ नहीं बदला यहाँ, सब वैसे ही चलता है।'

'अच्छा यह बता लाडो, अमरीका में होवें क्या खुसरे?'

'दादी सारी दुनिया में होते हैं।'

'वहाँ भी ऐसे ही ब्याह शादी में नाच गा के पेट भरें क्या ?'

'नहीं दादी, वहाँ ऐसा कुछ नहीं होता। वैसे भी अब दुनिया बदल रही है,क़ानून भी बदल रहे हैं। ये लोग भी पढ़ते-लिखते हैं नौकरी करते हैं।'

'हैं.! सच कह रही है क्या ?'

'हाँ दादी, अब आप ही बताओ इसमें इन बेचारों का क्या दोष जो जन्म ही भगवान् ने इस रूप में दिया। हमारे तो पुराणों में भी गंधर्व किन्नर का कितना वर्णन आता है।'

'किन्नर इन्ही को कहवें हैं क्या?'

'हाँ दादी, तब भी समाज में इन्हें मान्यता मिली हुई थी। समाज की बदली हुई सोच ने शायद इन्हें केवल नाच गा कर पेट पालने पर मजबूर कर दिया।'

'क्या बातें हो रही हैं घुट-घुट कर दादी पोती में ?'

'कुछ नहीं अम्मा, बस ऐसे ही। दे दी दवा आपने पापा को ? अब कैसा लग रहा है उन्हें?'

'ठीक हैं, ब्लड प्रेशर बढ़ा हुआ था। कुछ सूजन सी भी लग रही है बदन पर, शादी की भागदौड़ में ऐसा हो ही जाता है।'

'आज पापा को डॉक्टर को दिखा लेंगे।'

'बहू, खुसरों के लिए सीधा और मिठाई निकल कर रख लेना, क्या पता कब आ जाएँ।'

'हाँ अम्मा ! निकाल दूँगी।'

'बधाई हो बधाई !'

आवाज़ सुनते ही शालिनी बोली, 'लो दादी तुम याद ही कर रही थी और ये लोग आ भी गए।'

वह तीन लोग थे।

एक बड़ी ख़ूबसूरत क़रीब बीस साल की पीला सूट पहने लड़की, एक अधेड़ उम्र की जिसने साड़ी पहनी थी। साथ में ढोलक लिए एक व्यक्ति शायद वह भी खुसरा ही था।

शालिनी उस सुंदर सी लड़की को मुग्ध होकर देखती रह गई, लगा ही नहीं कि ईश्वर तू भी क्या क्या खेल खेलता है ? उसने ठंडी साँस ली।

'बधाई हो दादी, आज तो तगड़ा नेग लेकर मानूँगी, घर में चाँद सी बहू आई है। बुलाओ तो ज़रा बहू को आशीर्वाद दूँगी।'

'अरे वो न हैं घर में, बाहर घूमने गए दोनों।'

'कोई न, चलो, बजा रे ढोलक, ज़रा बढ़िया सी तान छेड़, आज दादी का दिल भी खुश कर दें।'

अधेड़ उम्र की वह बड़ी वाचाल लग रही थी, जबकि लड़की बेहद शांत पलकें झुकाए।

पापा भी तब तक उठ कर बाहर आ गए थे, सामने वरांडे में लगे वाश बेसिन पर हाथ धोने लगे।

घर में गहमागहमी सी हो रही थी। माँ भीतर खुसरों के लिए सामान लेने गई थी।

'पापा क्या हुआ आप बाहर क्यों आ गए ? लेटे रहते।'

'थोड़ी देर बाहर आँगन में बैठूँगा मैं भी, अंदर पड़े-पड़े तंग ही हो गया।'

'आओ फिर इस कुर्सी पर बैठो।'

'आ जाओ बाबूजी, आपसे अलग नेग लूँगी आज तो, ख़ुशी का मौक़ा है।'

'हाँ हाँ ले लेना', कहते हुए वह जैसे ही मुड़े अचानक गिरने लगे। सँभलते-सँभलते उन्होंने बेसिन पकड़ना चाहा पर वाश बेसिन सहित नीचे गिरे। वाश बेसिन टूट गया, उनका सिर ज़ोर से दरवाज़े में लगा।

'पापा, क्या हुआ ?' शालिनी भागी।

'अरे क्या हुआ ? देखो ज़रा कोई', दादी घबरा गईं।

खुसरे भी हतप्रभ से थे अचानक हुए इस हादसे से, अधेड़ वाली तो घबरा कर बैठ गई। लड़की तेज़ी से उठी और शालिनी के साथ उन्हें उठाने की कोशिश करने लगी। अरे कोई एम्बुलेंस बुलाओ, पापा को हॉस्पिटल ले जाना पड़ेगा। आवाज़ सुनकर माँ भी अंदर से भागती हुई आईं, देखकर घबरा गईं।

'दीदी, आप जल्दी से इन्हें हमारी कार में बैठाएँ, एम्बुलेंस आने में वक्त लग जाएगा। मैं ले चलती हूँ।'

शालिनी इससे पहले कुछ समझ पाती लड़की ने अपने साथ आए व्यक्ति की मदद से पापा को कार की पिछली सीट पर लेटाया।

'आप इनके साथ बैठिए, मैं ड्राइव करती हूँ।'

कुछ ही पलों में लड़की सड़क पर तेज़ी से हॉर्न बजाती रास्ता बनाती कार चला रही थी। अब तक शांत बैठी उस लड़की का आत्मविश्वास और फ़ुर्ती देख कर शालिनी भी हैरान थी।

हॉस्पिटल की इमरजेंसी में पहुँचते ही लड़की तेज़ी से कार से उतरी और डोर के बाहर लगा बटन दबा दिया। स्ट्रेचर लिए पलों में हॉस्पिटल स्टाफ़ हाज़िर था, पापा को अंदर ले ज़ाया गया। शालिनी साथ जाने लगी तो उन्होंने रोक दिया।

'दीदी आप यहाँ कुर्सी पर बैठें, मैं कार पार्क करके आती हूँ। आप चिंता न करें, पापा को कुछ नहीं होगा।'

शालिनी को जैसे कुछ समझ नहीं आ रहा था। लड़की आ गई।

'दीदी, यह हॉस्पिटल बहुत अच्छा है, सब ठीक हो जाएगा आप देखना।' शालिनी का हाथ धीरे से पकड़ कर वह बोली। शालिनी बहुत घबराई हुई थी, उसकी आँखें डबडबा रही थीं।

'तुम न होती तो क्या होता आज ? थैंक्स !'

'पारिजात, परी कहते हैं मुझे।'

'परी ही हो सच में तुम, बहुत प्यारी परी।' अंदर से एक नर्स ने आवाज़ लगाई, 'मिस्टर मदन के साथ कौन हैं ?'

शालिनी उठी।

'आप मेरे साथ अंदर आएँ डॉक्टर आपसे बात करेंगे'।

बड़ा सा इमरजेंसी रूम, पर्दे लगाकर कई सारे बेड लगाए हुए, सामने एक बेड पर पापा लेटे थे आँख बंद किए हुए।

'आप इनके साथ हैं ?' नौजवान डॉक्टर ने पूछा।

'मेरे फादर हैं।'

'ओके, देखिए समस्या गंभीर है। इनका बीपी और शुगर दोनों बढ़े हुए हैं। शुगर अधिक होने से ब्लड में कीटोंस हो गए हैं, ब्रेन को ऑक्सीजन कम पहुँचने के कारण यह कुछ पल के लिए बेहोश हुए।'

'यह कब से डाईबेटिक हैं ?'

'पाँच साल से।'

'और हार्ट प्रॉब्लम कब से है ?'

'पिछले दो सालों से।'

'ओके, अभी इनके कुछ और टेस्ट किए जा रहे हैं शायद कुछ दिन आइ सी यू में रखना पड़े।'

'डॉक्टर, क्या बहुत ख़तरा है?'

'यह तो अच्छा हुआ आप वक़्त से इन्हें यहाँ ले आईं, थोड़ी देर और हो जाती तो इनकी किडनी भी इफ़ेक्ट हो सकती थीं और कोमा में भी जा सकते थे।'

'ओह ! '

'अब सिचुएशन काफ़ी कंट्रोल में है। आप बाहर बैठिए, कुछ देर में रिपोर्ट आ जाएँगी तो आपको बताते हैं।'

'थैंक्स डॉक्टर !' भारी कदमों से शालिनी बाहर आ गई। परी बाहर ही बैठी थी।

'दीदी क्या बताया?'

शालिनी की आँखें बरसने लगीं। 'आज तुम न होतीं तो जाने क्या हो जाता।'

'दीदी, करने वाला तो ईश्वर होता है, हम तो केवल एक माध्यम हैं और कुछ नहीं। मैं न होती तो कोई और आ जाता मदद के लिए।'

शालिनी ने स्वयं को थोड़ा संयत किया।

'माँ, दादी चिंता कर रही होंगी, उन्हें बता देती पर जल्दी में मैंने अपना फ़ोन ही नहीं उठाया।'

'दीदी, मैंने काकी को फ़ोन करके यहाँ का सब हाल बता दिया। काकी अभी आपके घर पर ही हैं।'

'ओह ! थैंक्स परी।'

कुछ देर के लिए ख़ामोशी सी छा गई। शालिनी चिंतित सी बैठी थी,उसे समझ ही नहीं आ रहा था क्या बात करे ?

तभी परी के फ़ोन की घंटी बजी।

'दीदी, आप अपनी अम्मा से बात कर लीजिए।'

'हाँ अम्मा, अभी बेहतर हैं पापा। आप फ़िक्र न करें।'

'नहीं अम्मा उसे मत बताओ अभी, मैं सँभाल लूँगी सब। वह सुनते ही वापस आ जाएगा।'

'हाँ ठीक है,प्रणव को बता दो। वह भी घर के जैसा ही है। ठीक है, अच्छा बाय।'

'अम्मा बहुत परेशान हैं न दीदी ? आपने अच्छा किया भैया जी को बताने से मना कर दिया। अब डॉक्टर हैं न देखने के लिए।'

'हाँ बेकार में उसका हनीमून ख़राब होता, परसों तो उसकी वापसी की फ़्लाइट है ही और उसका एक ख़ास दोस्त है वह पहुँच रहा है थोड़ी देर में।'

'आपके लिए चाय ले आती हूँ, आपको अच्छा लगेगा। यहाँ का क्या पता कितनी देर लगेगी ? '

'नहीं रहने दो, मन नहीं है।'

'आप मेरी लायी चाय पी लेंगी न ?' शालिनी ने हैरान हो कर उसकी तरफ़ देखा, 'कैसी बात कर रही हो परी ?'

'दीदी, आप बाहर से आई हैं, आपको नहीं मालूम यहाँ हम जैसे लोगों को किस नज़र से देखा जाता है ? हमारा छुआ खाना तो बहुत दूर की बात लोग हमारी परछाईं से भी भागते हैं।'

'ग़लत है यह तो परी, हम सब ईश्वर की संतान हैं। '

'ईश्वर की संतान !!' उसके होठों पर एक व्यंग्य भरी मुस्कान थी।

'नहीं दीदी, ईश्वर हमें गढ़ते समय थोड़ा सा छल कर गया और एक नारकीय जीवन जीने को भेज दिया इस धरती पर।'

तभी बाहर लगे माइक पर आवाज़ आई, मदन जी के अटेंडेंट अंदर आ जाएँ। शालिनी घबरा कर उठी।

अंदर डॉक्टर प्रतीक्षा में था, 'देखिए, इनकी टेस्ट रिपोर्ट्स आ गई हैं। मैसिव हार्ट फ़ेल्यर है।'

शालिनी की आँखों में प्रश्न देख वह बोला, 'इनका हार्ट ठीक से पम्प नहीं कर रहा इसलिए बॉडी में फ़्लूइड बैक अप हो गया। इंटरा वीनस मेडिसिन देनी होंगी। शुगर भी शूट अप कर गई थी इसलिए इंसुलिन दिया गया है। कुछ दिन के लिए इन्हें आइ सी यू में शिफ़्ट कर रहे हैं। ऑब्ज़र्वेशन में रखना ज़रूरी है। आप यह फ़ॉर्म भर दीजिए।'

मदन जी को हॉस्पिटल की पाँचवीं मंज़िल पर बने आइ सी यू में भेज दिया गया। परी लगातार साथ बनी रही, शालिनी के बहुत कहने पर भी वह नहीं गई।

दोनों आइ सी यू के बाहर बने वेटिंग रूम में बैठ गईं।

'दीदी, आप अपने पापा को बहुत प्यार करती हैं ?'

'यह कैसा सवाल है परी ? सभी बच्चे अपने पापा को प्यार करते हैं।'

'और जिन्हें यह पता ही न हो कि उसके पापा कौन हैं, वह क्या करे ?' परी के स्वर का दर्द उसकी आँखों में छलक आया।

शालिनी हतप्रभ मौन होकर उसे देखती रह गई। सच पूछो तो कभी ध्यान ही नहीं गया कि इस जैसे लोगों की भावनाएँ भी तो कभी आहत होती होंगी जब स्वयं को असामान्य पाते होंगे।

फिर न जाने क्या हुआ कि कुछ देर मौन रहकर अचानक परी ने कहना शुरू किया, 'जब से मैंने होश सँ ला तो केवल काकी को ही हमेशा अपने पास देखा। कुछ घरों का एक बड़ा सा टोला शहर से अलग, जहाँ हमारे जैसे लोगों के घर थे। पता ही नहीं था तब कि परिवार किसे कहते हैं ?

काकी जब भी बाहर जाती तो बाहर से दरवाज़ा बंद कर खाने-पीने का सामान रख जाती। मैं ज़िद करती साथ जाने को तो मुझसे कहतीं, अभी समय नहीं आया, जब समय आएगा तब ले जाऊँगी। कभी सामान्य बच्चों को देखा नहीं, जाना ही नहीं, उनके बीच रही ही नहीं, तो कभी ऐसा लगा ही नहीं कि मैं उनसे अलग हूँ।'

'फिर क्या हुआ मतलब कब ?'

एक दिन काकी बाज़ार गई, मुझे कार में ही बैठाकर दुकान पर कुछ लेने चली गईं। सामने पार्क था, वहाँ मेरी उम्र के कुछ बच्चे खेल रहे थे। मैं कार से उतर कर उन्हें पार्क के बाहर से ही देखने लगी। मेरा भी मन कर रहा था उनके साथ खेलने का।

तभी वहाँ एक व्यक्ति आया और एक बच्चा पापा-पापा कह कर उसकी गोद में चढ़ गया। उस व्यक्ति ने उसे बहुत प्यार किया। मैं खोई सी खड़ी देख रही थी कि काकी की आवाज़ पर भाग कर वापस कार में बैठ गई।

'काकी, यह पापा कौन होते हैं ? मेरे पापा भी हैं क्या?'

'यह कैसा सवाल आया आज तुम्हारे दिमाग़ में ?'

'बताओ न काकी, क्या सब बच्चों के पापा होते हैं ?'

काकी ने चुपचाप बस मेरे सिर पर हाथ रखा, कहा कुछ नहीं।

'ले तू चॉकलेट खा, तेरी पसंद की लायी हूँ।'

'मेरा बालमन चॉकलेट की मिठास में खो गया और भूल गया अपने सवाल को। उस रात काकी की सिसकियों से मेरी नींद खुली। काकी भगवान् की फ़ोटो के सामने बैठी सिसक रही थीं।

'आज फिर शिकायत करने बैठी हूँ तुमसे क्यों भेजा हमें इस दुनिया में अगर यही ज़िंदगी देनी थी ? क्या जवाब दूँ अब इस अभागी मासूम को, जिसके जन्मदाता उसे अपनी औलाद तक नहीं कह सके। करमजली अभागी को मेरी गोद में डाल दिया। कैसे बताऊँ उसे कि हमारे जैसों के कोई माँ-बाप कोई परिवार नहीं होता।' मैं जाकर काकी से लिपट गई।

'काकी, क्या हुआ तुम क्यों रो रही हो ? मैं नहीं पूछूँगी कुछ भी, आप चुप हो जाओ।'

काकी का रुदन और भी फूट पड़ा, कस कर गले से लगा लिया मुझे, 'अरी करमजली मैं ही तेरी माँ तेरा बाप तेरा परिवार सब कुछ हूँ।' उस समय कुछ समझ नहीं आया मुझे पर काकी का रुदन देख अचानक उस रात मैं अपनी उम्र से बहुत बड़ी हो गई।

'कुछ दिनों बाद मुझे अपनी स्थिति का भान स्वयं ही हो गया और दुनिया में समाज में अपनी जगह का पता भी चल गया।'

'बहुत बुरा लगता होगा ?' शालिनी की आँखें बरस रही थीं।

'बुरा ? रातों को उठ-उठ कर अपने जिस्म को टटोलती, ईश्वर से प्रार्थना करती शायद कोई चमत्कार हो जाए पर नहीं। हर रात मेरी बेबसी रुदन में बदल जाती।'

शालिनी ने परी का हाथ अपने हाथों मे ले लिया, कुछ नहीं कहा, कहती भी क्या ?

'आज जब आपके पापा को इस हालत में देखा तो लगा ईश्वर ने मुझे तो ऐसी क़िस्मत नहीं दी कि जान सकती कि मेरे जन्मदाता कौन थे और उनके लिए कुछ कर सकती। पर लगा कि आपके पापा के लिए अगर कुछ भी कर सकी तो मेरे मन की तड़प शायद थोड़ी कम हो जाए।'

'तुम्हारे कारण तो आज उन्हें ज़िंदगी मिली है परी, मैं तो तुम्हारा उपकार नहीं भूल सकती कभी।' अपने आँसू छिपाते हुए परी उठकर पानी पीने चली गई।

शालिनी परी के जीवन की विवशता में कुछ पल के लिए अपना दु:ख भूल गई।

कितना दर्द समेटे हुए है अपने भीतर ? कभी समाज इंसानियत की दृष्टि से इन्हें क्यों नही देखता ? एक प्रश्न उसके मन में उठा, क्यों सभी इन्हें असामान्य समझ एक हेय दृष्टि से देखते हैं ? इनके जन्म में इनका क्या दोष जो समाज की बेधती दृष्टि का सामना हरदम करते हुए जीना पड़ता है ? शालिनी ने स्वयं भी तो पहले कभी इस बारे में नहीं सोचा था पर आज जब इतनी नज़दीक से उसने परी को जाना तो उसकी सोच परिवर्तित हो गई। उसे लगा जैसे पारिजात के पवित्र फूलों की ख़ुशबू जैसे उसके आस-पास फैल गई।

तभी प्रणव आकर उसके पास बैठ गया।

'दीदी, अंकल कैसे हैं अब ? डॉक्टर क्या बोले?'

'अभी सिचुएशन कंट्रोल में है। अच्छा किया तू आ गया।'

'आप आई कैसे यहाँ अंकल को लेकर ? मुझे फ़ोन कर दिया होता।'

'समय ही कहाँ था प्रणव ? स्थिति बहुत ख़राब हो रही थी, एंबुलेंस तक बुलाने का वक़्त नहीं था।'

'फिर कैसे मैनेज़ किया ?'

'बताती हूँ,' शालिनी ने नज़र इधर-उधर दौड़ाई परी को ढूँढ़ने के लिए। पर परी प्रणव को शालिनी के पास देखकर दूर से हाथ हिलाकर चुपचाप वहाँ से तेज़ी से निकल गई, शायद नहीं चाहती थी कि कोई उसके बारे में जाने। शालिनी ठंडी साँस भरकर रह गई।

'ईश्वर ने एक देवदूत भेज दिया था प्रणव, उसी अनजान ने मदद की।'

शालिनी सोच रही थी कैसे बिना कुछ कहे वह चली गई? पर पारिजात की महक हमेशा के लिए अपनी छाप छोड़ गई थी।

हॉस्पिटल से परी सीधी शालिनी के घर गई। 'काकी चलो, अब सब ठीक है दीदी के पास कोई आ गया था तो मैं आ गई।

'बहुत-बहुत धन्यवाद तुम्हारा,' माँ और दादी हाथ जोड़े खड़ी थीं।

'हमारे नहीं, भगवान् के आगे हाथ जोड़ना।' काकी बोली।

'जाओ अब एक थाली में थोड़े चावल रखकर लाओ, आई हूँ तो आशीर्वाद देकर ही जाऊँगी।'काकी ने आदेश दिया।

माँ एक थाल में चावल, मिठाई, कपड़े, रुपए आदि सब ले आई जो उन्होंने निकाल कर रखे थे।

काकी ने थाल में से मुट्ठी भर चावल लिए और पानी छिड़ककर मन ही मन कुछ प्रार्थना की और फिर दादी को वह चावल देकर बोली, बेटा-बहू जब वापस आएँ तो उनके तकिए के नीचे रख देना। तेरी वंश बेल जल्दी ही बढ़ेगी।

फिर थाली के आधे चावल ख़ुद लिए और बाक़ी माँ को देकर बोली, ले अपनी रसोई में पका लेना। तेरा घर भंडार भरा रहे।

'अपना ख़याल रखना और बाबूजी का भी। चिंता मत करना कुछ नहीं होगा। अब तेरे पोते की बधाई का नेग लेने ही आऊँगी, चलती हूँ।'

'माँ दादी के आँसू नहीं थम रहे थे।'

काकी ने बहुत कहने पर भी मुट्ठी भर चावलों के सिवा कुछ नहीं लिया और आशीर्वाद देकर कार में बैठकर चली गई।

देवदूत बन कर आए इन खुसरों का ऐसा नया रूप देखकर दोनों ही हतप्रभ सी खड़ी कार को जाते हुए देखती रह गईं।

000

बेरहम

सुधा गोयल

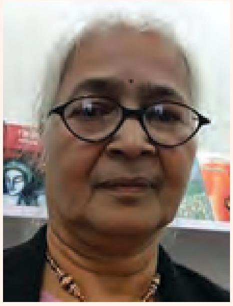

सुधा गोयल
290-ए, कृष्णानगर, डॉ. दत्ता लेन,
बुलंदशहर- 203001 उप्र
मोबाइल- 9917869962
ईमेल- sudhagoyal0404@gmail.com

सावित्री देवी का रोना था कि रुक ही नहीं रहा था। इतना तो वह अपने पति की मृत्यु पर भी नहीं रोईं थीं। बहुओं से कोई पूछता कि सावित्री अम्मा इतना क्यों रो रही हैं तो वे मुँह बिचकाकर कहतीं-"इनकी माया ये ही जाने। रोतीं ये हैं और इनके बेटे कान हमारे खींचते हैं। जब तक इनके बेटे नहीं आ जाते और उनसे हमारी लानत-मलानत नहीं करा लेंती तब तक इनका रोना रुकेगा थोड़े ही।" बड़ी बहू जयंती ने कहा।

"भाभी, तुमने जानने की कोशिश की? मैंने अम्मा को इतना रोते कभी नहीं देखा।"

"हम तो पूछ पूछकर थक गए। तुम्हीं पूछकर देख लो। शायद तुम्हारे पूछने पर कुछ बताएँ। बाहर वालों को देखकर इनके आँसू कुछ ज़्यादा ही उमड़ते हैं। अब भला यह भी कोई बात हुई। अम्मा इतनी बूढ़ी हो गई हैं। पूरा एक बड़ा कमरा घेरे पड़ीं हैं, बड़े बूढ़े तो स्टोर, बरामदे या गैलरी में लेट बैठकर वक़्त काट लेते हैं। पर इनकी तो बात ही निराली है। लेखिका हैं न। बेशक अब किसी को इनका नाम भी याद नहीं होगा। लेकिन अभी भी अपनी पढ़ाई का ग़ुरूर नहीं गया।

ढेरों किताब कागज़ अलमारी में ठुँसे पड़े हैं। फ़ाइलें अलग धूल चाट रही है। सालों हो गए होंगे हाथ लगाए,पर हमसे ज़्यादा प्यार-दुलार इनसे है। ये पूजा के लायक हैं पर हम जीते जागते इंसान जो इनकी सेवा टहल में लगे रहते हैं- इनके दुश्मन हैं। जैसे हम सब तो अनपढ़ गँवार हैं।

पिचहतर साल की हो गई। आँखों से कम दीखने लगा। कोई सीमा है लिखने की? आख़िर कब तक लिखेंगी? आदमी को रहने को जगह चाहिए या कागज़ पत्तर रखने को। मरेंगी तो छाती पर रखकर ले जाएँगी। आसानी से प्राण भी नहीं निकलेंगे। यमराज ढूँढ़ते फिरेंगे और इनका जीव यहीं कहीं किसी फाइल में छुपा बैठा होगा।" छोटी भाभी अनु ने अपना आक्रोश उड़ेला।

"यह सही है कि मैं पराई हूँ। मुझे हक भी नहीं है। लेकिन आपका ग़ुस्सा बता रहा है कि बात कुछ तो है ही।"

"अब मैं क्या कहूँ, तुम्हीं अपनी अम्मा से पूछना। तुम्हें देखकर तो उनकी आँखों में चमक आ जाती है।"

"भाभी, क्यों उलाहना देती हो। मैं तो अम्मा का सम्मान करती हूँ। अम्मा की लिखी कहानियाँ मुझे पसंद हैं। अम्मा के टी.वी.सीरियल के नोट तो आप ही सँभालती हो भाभी। चैक भी भैया जमा कराते हैं।"

"तुम्हारे पेट में दर्द हुआ दिव्या?" जयंती भाभी ने कहा।

"मुझे क्यों दर्द होगा भाभी? आपकी सास हैं आपकी ही रहेंगी। मुझे तो बस अम्मा का आँसू देखकर दर्द हो रहा है। आप नहीं चाहतीं कि मैं अम्मा को चुप कराऊँ तो मैं चली जाती हूँ।" मैं जाने के लिए उठ खड़ी हुई।

"तुम क्यों जाओगी। तुम अम्मा का दु:ख दर्द बाँटो। हम ही चले जाते हैं।" जयंती भाभी ने उठते हुए अनु भाभी से भी कहा-"चल न अनु, यहाँ क्यों अपना दिमाग़ ख़राब करती है।"

दोनों अंदर चलीं गईं। मैं किंकर्त्तव्यविमूढ़ सी खड़ी रह गई। अम्मा की हिचकियों ने वापस जाते मेरे पाँव रोक दिए; क्योंकि जब से सावित्री अम्मा को कम दीखने लगा है वे अक्सर मेरे आने से खुश हो जातीं हैं। खुश होकर कहेंगी -"बेटी मैं तुझी को याद कर रही थी। आज बहुत दिन बाद दीखी।"

"अम्मा, कुछ काम था तो कहलवा देती।"

"कहलवाती किससे, कुछ लिखना चाहती हूँ तो लिख नहीं पाती। तू आ जाती है तो तुझे बोल देती हूँ। तू सब लिख देती है। इस बूढ़ी पर कितना उपकार है तेरा।" अम्मा गद्‌गद्‌ हो उठी।

"अम्मा,ये बातें छोड़ो और मेरी सुनो। कल बारह बजे तैयार रहना। आपको आँखें दिखाने चलना है। आपका उपकार मुझ पर है जो मैं आपके पास आकर अपने सुख-दुख भूल जाती हूँ। कितनी भी परेशानी हो पर आपकी क़लम रुकती नहीं। मुझे ताज्जुब होता है कि आपके अंदर इतना दर्द कहाँ से आया। इतना लिखती हैं फिर भी चुकती नहीं।"

अम्मा कहतीं-"तू ठीक कहती है दिव्या। हर बार लिखने के बाद लगता है कि अभी अनकहा बहुत कुछ रह गया। जब तक आदमी रहेगा आदमी की पीड़ा तो रहेगी न। बस उसे अनुभव करने की देर है। जिस दिन दर्द नहीं रहेगा क़लम भी नहीं चलेगी।"

अम्मा सबके दु:ख में कातर हो उठती। पास पड़ोस, नाते रिश्ते सभी निभातीं। खाली बैठना तो अम्मा ने कभी सीखा ही नहीं। अक्सर अम्मा कहतीं-"बीता वक़्त लौटकर नहीं आता। जितना वक्त है उसका सदुपयोग कर लूँ। क्या पता कब उठकर चल दूँ।"

मैंने अम्मा को दस साल की उम्र से जाना है। मेरी माँ मुझे अक्सर अम्मा के यहाँ किसी न किसी काम से भेजतीं रहतीं। मैं हमेशा उन्हें व्यस्त पाती। कभी सिलाई मशीन लिए बैठी मिलती, कभी स्वेटर बुनती। कभी रसोई में व्यस्त पाती या पापड़ बड़ियाँ बना रही होतीं। यदि यह नहीं कर रही होतीं तो नितिन, प्रवीण और शुभा को पढ़ा रही होती। मिलने-जुलने वालों की आवभगत भी ख़ूब करतीं।

मैं हाई स्कूल में थी। एक दिन रविवारीय परिशिष्ट में एक कहानी छपी थी और उसमें अम्मा का चित्र भी छपा था। अख़बार हाथ में लिए माँ के पास पहुँची और अख़ुबार माँ के आगे फैला दिया। माँ ने चित्र देखा और मुस्कराईं-"मैं जानती हूँ कि सावित्री अम्मा लेखिका हैं।"-सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ।

"वे सारे दिन काम में लगी रहतीं हैं लिखती कब हैं? सब कहते हैं कि लेखक सनकी होते हैं, लेकिन वे आपकी तरह ही हैं।"

"खड़ी-खड़ी मेरा सिर क्यों खा रही है। कहानी पढ़ और अपनी अम्मा को बधाई देकर आ। कहना माँ ने याद किया है।"

अख़बार हाथ में लिए मैं दौड़ गई। देखा सावित्री अम्मा सहन में कपड़े सुखा रही हैं।

"अम्मा, आज का अख़बार देखा। माँ बता रही हैं कि आप कहानी लिखतीं हैं। मैंने आपकी कहानी पढ़ी है। और भी पढ़ाएँगी। सिखाएँगी भी कि कहानी कैसे लिखते हैं?" मैं एक ही साँस में इतनी सारी बातें कह गई।

अम्मा मेरे सिर पर हाथ फिराकर बोली,-"शांत हो। पहले बैठ। खुशी और कौतूहल से तेरी साँस उखड़ रही है। एक बार में एक सवाल पूछ। मैं तेरे हर सवाल का उत्तर दूँगी।"

बस उस दिन के बाद अम्मा मेरे लिए तीर्थ बन गई। मैं अम्मा की कहानियाँ पढ़ती, अपनी सहेलियों को पढ़ाती। अम्मा की किताबें छपीं। अम्मा को पुरस्कार सम्मान मिले, लेकिन अम्मा जब की तस। अम्मा में न अभिमान,न ईर्ष्या, न दिखावा। वैसे ही सरल और सीधी। उन्हें देख कर कोई कहा नहीं सकता कि वे इतनी अच्छी कहानियाँ लिखती हैं। अम्मा जितनी अच्छी लेखिका रही उतनी ही अच्छी गृहस्थिन भी। उनसे कभी किसी को शिकायत नहीं हुई। अम्मा की कहानियों पर टी.वी. सीरियल बने। अम्मा ने पटकथाएँ लिखीं। नाम और पैसा दोनों ही अम्मा को मिले। अम्मा यानी सावित्री जुनेजा कहाँ नहीं थीं। वे लेखन की बुलंदियों पर थीं। अपने शहर की पहचान उनसे थी। चेहरे पर आत्माभिमान की गरिमापूर्ण स्वीकारोक्ति के साथ एक गंभीर मुस्कान। फालतू की गप्पबाज़ी उन्हें पसन्द न थी। कम बोलतीं पर सटीक बोलतीं।जो एक बार भी अम्मा के सम्पर्क में आया उनकी विद्वता का मुरीद बन कर रह गया।

जुनेजा अंकल हँसकर कहते,-"बिटिया, तुझ पर तेरी अम्मा ने अपना रंग ख़ूब अच्छे से चढ़ा दिया है। बौराई सी आगे पीछे घूमती है।"

"कहाँ अंकल, मैं तो चाहकर भी नहीं लिख पाती। बस अम्मा की कहानियाँ पढ़ लेती हूँ।"

"सब कहाँ लिख पाते हैं बेटी, मैं तो एक चिट्ठी भी नहीं लिख सकता और तुम्हारी अम्मा।"

वक़्त खिसकता रहा। सावित्री अम्मा तरक्की के सोपान छूतीं रहीं और मैं पढ़ाई पूरी कर ससुराल पहुँचा दी गई जो साल भर बाद ही अपनी माँग का सिंदूर पुँछवा कर बैरंग लौट आई। तब सावित्री अम्मा ने बड़ा सहारा दिया। आत्मविश्वास जगाया। मुझे मेरे पैरों की ज़मीन माँ- बाबूजी से लड़ झगड़कर दिलाई। सावित्री अम्मा मेरे जीवन में न आईं होती तो ससुराल की चौखट पर पड़ी हर वक़्त दुरदुराई जाती रहती।

भाभियाँ बेशक मेरी भावनाएँ न समझें। मुझे पराया कह लें, लेकिन अम्मा मेरे लिए मुझसे भी बढ़ कर हैं। अम्मा के प्यार-दुलार की छाया वटवृक्ष की तरह है। जहाँ बैठकर घड़ी दो घड़ी सुस्ता लेती हूँ। नितिन अक्सर अम्मा से कहता,"अम्मा, तुम दिव्या को इमोशनली ब्लैक मेल करती हो।"

अम्मा चौंक कर कहतीं-" तुम तो मेरे पेट जाए हो। मैं तुम्हें इमोशनली ब्लैक मेल क्यों नहीं करती?"

"क्योंकि हम तुम्हारे झाँसों में नहीं आते। अपनी नज़र से दुनिया देखते हैं। लड़कियाँ शुरू से ही भावुक होती हैं, कहीं भी बहक जाती हैं। आप दो अक्षर क्या लिखने लगीं, पता नहीं अपने आप को क्या समझने लगीं।"

अम्मा को लगता कि उनके सपूत उन्हीं को नहीं सह पा रहे हैं। ज़ुबान के खंजर उनके दिल में पैवस्त कर उन्हें लहूलुहान करते रहते हैं। जबकि उन्होंने कभी किसी को खंजर नहीं भोंके। बहुएँ आईं तो खंजर और भी पैने हो गए। जब तब उन्हें चीरकर लहू पी जाते, वे निढाल हो जाती। मानसिक वेदना से तड़प उठतीं। कई -कई दिन तक क़लम हाथ में न पकड़ती। अक्सर कहतीं-"बेटी, तूने देखा है ऐसा घर, जिसे उसी के बच्चे जला रहे हों।"

मैं अम्मा के कंधे पर हाथ रखकर सांत्वना देती,-"ये सब मिलकर आपके दर्द में हिलोरें पैदा करते हैं। आपको लिखने के लिए प्रेरित करते हैं।"

अम्मा निढाल सी पड़ी कहती,-"समझ नहीं आता बेटी की पीड़ा का कौन सा किनारा थामूँ? अपने आँसुओं को कब तक भुनाऊँ?"

"अम्मा,आप ग़लत सोचती हैं। आँसुओं को भुनाती कहाँ हैं, आँसुओं की शबनम अपने साहित्य में बिछा देतीं हैं।"

अम्मा हँस पड़तीं-"मेरी बेटी समझदार हो गई है।"

जुनेजा अंकल के रहते वे बेख़ौफ़ रहीं। अंकल सुरक्षा कवच की तरह उनके साथ रहे। किसी की हिम्मत नहीं थी कि कोई उल्टा सीधा बोलता। बेशक अंकल ने उनका लिखा कभी बाँचा नहीं। लेकिन लिखने में भी कभी रुकावट नहीं डाली। वे अक्सर कहते कि सावित्री को दैवीय वरदान मिला है। मैं उसे

सरस्वती की आराधना से क्यों रोकूँ? फिर घर गृहस्थी के किसी काम में उसकी क़लम से कोई व्यवधान नहीं है।

वह अपना काम करतीं। कागज़ क़लम ख़रीदने हों, टाइप कराना हो,पोस्ट ऑफ़िस जाना हो-अम्मा के निजी काम थे। अपने रायल्टी के चैक स्वंय बैंक में जमा करा आतीं। उन्होंने अपने किसी काम के लिए पति या पुत्र किसी को भी कष्ट नहीं दिया। इसी से सब कुछ शांति और आराम से चल रहा था।

लेकिन वक़्त क्या कभी एक साथ रहा है। धीरे-धीरे अम्मा अपनों के बीच नितांत अकेली रह गई। बहुओं के व्यंग्य क्या कम झेलने पड़ते?अम्मा से कोई पाठक मिलने आता तो बहुएँ हँसकर कहतीं-"लो अम्मा का प्रेमी आ गया।"

अम्मा सुनकर अवाक् रह जातीं। बहुओं के साथ पुत्र भी ही-हीकर हँसने लगते। इस उम्र में इतनी गलीच बातें कलेजा छलनी कर जातीं। प्रशंसकों की चिट्ठियाँ अम्मा के प्रेम-पत्र होते। अम्मा के पीछे उन्हें खोलकर बाँचा जाता। अम्मा का मज़ाक उड़ाया जाता। अम्मा अपने ही घर में उपेक्षित हो गई।

अम्मा की आँखों पर चश्मा तो अंकल के सामने ही चढ़ गया था। नंबर बढ़ता तो अम्मा स्वंय आँखें टैस्ट कराकर नया चश्मा बनवा लेतीं, किसी को पता भी न चलता। धीरे-धीरे अम्मा की सामर्थ्य चुकने लगी। अम्मा,अपनी बड़ी पोती से कुछ सहायता कभी-कभी लेने लगीं। कभी अपनी कोई कहानी नकल के लिए पकड़ा देती। एक दिन जयंती भाभी ने देख लिया। निधि के हाथ से कहानी छीन कर फाड़ दी। और गरजती हुई बोली-"अब इन्हें भी क्या अपने जैसा बनाओगी। कहानियों की नकल करेगी तो पढ़ेगी क्या खाक?"

उन्हें याद नहीं कि निधि फिर कभी वहाँ आई हो। एक दिन स्कूल जाते उमंग को टोककर अम्मा ने कहा-"उमंग ज़रा मेरी चिट्ठियाँ डाल देना।"

उमंग ने अम्मा से चिट्ठियाँ ले लीं। अनु भाभी ने देख लिया। उमंग के साथ से चिट्ठियाँ छीनकर पलंग पर फेंक दी और भड़कते हुए बोली-"अम्मा तुम तो लिखते-लिखते सठिया गई। अब बच्चे बिना तुम्हारा बोझा लादे स्कूल नहीं जा सकते। उनके बस्ते क्या कम भारी है?"

अम्मा क्या कहतीं, खिसिया कर रह गई।

पोस्टमैन न आता तो अम्मा का मन फड़कता रहता। अम्मा को चिंता सताती कि कहीं डाक इधर-उधर न डाल दें। या बहुओं ने ही फाड़कर फेंक दी हो। पोस्टमैन के आने के समय अम्मा खिड़की के पास बैठी रहतीं। अम्मा का लेखन अब काफी कम हो गया था।

अंकल के सामने पाँच -छः अख़बार हर रविवार को ज़रूर आते। अख़बार वाला न डाल जाता तो वे जाकर ले आते। अख़बार के रविवारीय परिशिष्ट अम्मा सँभाल कर रख लेती और फुर्सत में इत्मीनान से पढ़ती। किसी न किसी अख़बार में अम्मा की कहानी ज़रूर होती। बाज़ार जाती रहतीं। पत्रिकाएँ पलटकर देखती रहतीं। बुकसेलर भी अम्मा के परिचित हो गए थे। अम्मा को अख़बार और मैगज़ीन पर कमीशन मिलता। यदि लेखकीय प्रति डाक से न आती तो अम्मा स्वंय ख़रीद लातीं। बहुओं ने शायद ही कभी अम्मा का लिखा पढ़ा हो। उन्हें तो अम्मा को चिढ़ाने और खिजाने से ही फुर्सत न थी।

मैं आई तो अम्मा को थोड़ा सहारा हो गया। अम्मा की अप्रकाशित कहानी ले जाती। दुबारा नकल करने के साथ साथ पीडीएॅफ़ फाइल में कनवर्ट कर देती या उनकी फाइल की पैन ड्राइव बनवा देती। मैं अम्मा की ज़्यादातर कहानियाँ मेल से भेजती। एक दिन अम्मा के जन्म दिन पर अम्मा को एक मोबाइल लाकर गिफ्ट किया। अम्मा इतना महँगा गिफ्ट लेने को तैयार ही न थीं। मुश्किल से इस शर्त पर मानी कि आधे पैसे वे देंगी। धीरे-धीरे अम्मा मोबाइल चलाना सीखने लगी, लेकिन उन्हें अभी भी अपने हाथ से लिखे पर ज़्यादा विश्वास था।

एक दिन अम्मा को सरकारी पत्र आया। अम्मा को अपनी पुस्तक अनुकृति पर पुरस्कार मिला था। पुरस्कार प्रधानमंत्री के हाथों मिलना था। जैसे ही यह ख़बर घर में लगी सब अम्मा को पुचकारने लगे। अम्मा सबके लिए मक्खन मलाई हो गई। अम्मा के साथ कौन-कौन जाएगा - सब मन ही मन सोच कर खुश होने लगे। और अम्मा के चेहरे पर पल भर को रौनक आई लेकिन फिर चिंता के बादल घुमड़े लगे।

"दिव्या, तू मेरे साथ चलेगी?"

"अम्मा बड़े भैया और भाभी जा तो रहे हैं। सब ठीक होगा। आप चिंता मत करो।"

"जब यहाँ कुछ ठीक नहीं है, तो वहाँ कैसे ठीक होगा।"

"हौसला रखो अम्मा, इस समय तुम भैया-भाभी के साथ जाओ। पीछे से मैं आ जाऊँगी। कुछ ग़लत हुआ तो सँभाल लूँगी।"

अम्मा को सवा लाख का चैक, शॉल और प्रशस्ति पत्र मिला। ढेरों बधाई कार्ड आए। पुस्तक की डेढ़ लाख प्रतियाँ बिकीं। पैसे बहू-बेटों की जेबें भरते रहे। अम्मा रीतती रहीं। अम्मा के हिस्से में मात्र प्रशस्ति पत्र आया। शॉल बड़ी बहू के हिस्से में रहा। अम्मा जब बेचैन होतीं, प्रशस्ति पत्र निकालकर सहलाने लगतीं। जैसे अम्मा स्वंय को सहला रही हों।

अम्मा फिर वही हो गई। उजाले औरों ने समेट लिए और अम्मा के आँगन में अँधेरे बिखेर दिए। यदा-कदा नेत्रों के रुख अम्मा से छिटक कर मेरी ओर भी होने लगे।

अनु भाभी की बात दिमाग़ से निकाल कर मैं अम्मा के पास पहुँची। अपने आँचल से अम्मा के आँसू पोंछे और पूछा-"क्या हुआ अम्मा?" अम्मा ने नज़रें उठाकर मुझे देखा, फिर अपने खाली कमरे की ओर। अम्मा की नज़रों के साथ मेरी भी नज़रें घूमी। चौंक उठी मैं। "अम्मा आपकी किताबें और पाँडुलिपियाँ कहाँ गईं।"

"अनु ने रद्दी वाले को बेच दी।"

"आप इसलिए रो रही थीं। आँसू पोंछ लीजिए और देखिए मैं आपके लिए क्या लाई हूँ।" अम्मा ने आश्चर्य से मुझे देखा। मैंने पैन ड्राइव उन्हें देते हुए कहा-"आपका कुछ भी कहीं नहीं गया है। बस ऊपरी चोला बदला है।" मैंने पैन ड्राइव लैंप टॉप में लगा दी। अम्मा ग़ौर से देखने लगीं फिर गले लगाकर बोलीं-"बेटी, आज तूने मुझे नया जन्म देकर बचा लिया है।"

000

लम्बी कहानी

औराते-बौराते

अमरेंद्र मिश्र

लगभग दस बरस बाद वे फिर मिले थे... पहल शिवेंद्र ने की थी। माधुरी को कुछ पता नहीं था कि शिवेंद्र ने कब उससे बात की थी। यह तो याद है कि कभी संवाद के माध्यम से दोनों के बीच गुफ्तगू हुई थी। तब शिवेंद्र एक पत्रिका के एडिटर हुआ करते थे और शायद पत्रिका संबंधी ही संवाद चला था दोनों के बीच लेकिन वह संवाद बहुत अधिक अंतरंग नहीं था... कुछ संवाद बहुत औपचारिक होते हैं खासकर जब तक दोनों को एक-दूसरे के विषय में अधिक पता न हो तो वहाँ औपचारिक ही होना होता है। जब तक दो एक-दूसरे को बेहतर समझ न लें तब तक अंतरंगता नहीं आती। दस वर्ष पूर्व का वह संवाद ऐसा कुछ नहीं था कि वह शिवेंद्र या माधुरी को याद हो। ऐसे संवाद तो चलते ही रहते हैं, अनजाने में भी और वक़्त बीतने के साथ भुला दिए जाते हैं। और दोनों के बीच कुछ ऐसा ही हुआ था। उन दस वर्षों के दौरान उस संक्षिप्त संवाद के बाद ऐसा कुछ नहीं हुआ था कि दोनों याद रख सकें। लेकिन शिवेंद्र अक्सर माधुरी की यह कही बात ज़रूर याद करते थे जब उसने कहा था कि "आप एक साथ इतना काम कैसे कर लेते हैं?" हालाँकि यह सवाल भी ऐसा नहीं था जो किसी तरह की निकटता या अंतरंगता को इंगित करे लेकिन तब उन्हें लगा था कि यह माधुरी की संवेदना ही है जो इस तरह की बात पूछ रही है? तब उन्होंने उस एक वाक्य को कई बार पढ़ा था... उस वाक्य की संगति उन्होंने अपनी तरफ से सार्थक करते सोचा था कि अगर संवाद जारी रहा होता तो माधुरी ज़रूर पूछती- "क्या मैं आपको हेल्प कर सकती हूँ।" वह ऐसा कह सकती थी यह सोचकर शिवेंद्र ख़ुश हो जाया करते थे और सोचते थे कि काश, ऐसा ही हुआ होता? लेकिन वे रुके यहाँ भी नहीं थे... सिर्फ सोचते रहे थे... कुछ ज़्यादा नहीं सोच पाये थे। उन दिनों माधुरी का फ़ोन तो था उनके पास लेकिन कभी बात नहीं की थी। इस तरह अचानक क्या किसी से बात की जा सकती है? बात करने पर पता नहीं क्या प्रतिक्रिया मिले क्या पता माधुरी कुछ सोच ले? और बात भी क्या करें? तब ये सवाल महज सवाल ही थे, जिनका उत्तर खोजना उतना लाजिमी नहीं था, इस बात को शिवेंद्र जानते थे। और इसी उधेड़बुन में यह कहना भूल गए थे कि वे इतना काम एक साथ कैसे कर पाते हैं? तब उन्हें ऐसा लगा था कि शायद ऐसा सोचना या करना बहुत ठीक नहीं होगा।

दस वर्ष पहले का यह प्रसंग कुछ वैसा नहीं जिसे याद रखा जा सके लेकिन आज की घटना को उस वक़्त के उस संवाद को जोड़कर देखना एक दिलचस्प अनुभव है। शायद माधुरी को भी याद न हो कि उस वक़्त उसने उनसे और क्या कहा होगा? कई बातें हमें कहाँ याद रहती हैं। जीवन में जितनी घटनाएँ घटती हैं, उन घटनाओं के साथ जितनी बातें होती हैं ज़िंदगी एक-एक

अमरेंद्र मिश्र,
'मौसम', 4/516 पार्क एवेन्यू, वैशाली,
गाज़ियाबाद-201010
मोबाइल- 9873525152
ईमेल- samhutpatrika@gmail.com

का हिसाब रखती है और कभी-कभी हमें ठीक समय पर बताती भी है। यह हमारे ऊपर निर्भर करता है कि हम ख़ुद तय करें कि उन बीते दिनों में कही गई बातें या घटित संवाद हमारे कितने अंतरंग होते हैं। लेकिन उन्हें याद तभी किया जाता है जब याद करने लायक स्मृति हो। ज़्यादातर बातें, ज़्यादातर घटनाएँ जो हमारे साथ चलती होती हैं, कहीं बीच में छूट भी जाती हैं, किसी उस हमसफ़र की तरह जो साथ चलते बीच राह हमें छोड़ जाता है। उस वक़्त शिवेंद्र इसी मानसिकता के बीच यह सब सोच रहे थे जब उन्हें अकस्मात् रागिनी की याद आई।

वह एक भयानक हादसा था जब रागिनी इस नश्वर जगत् से अचानक चली गई और शिवेंद्र उसका जाना देखते रहे। बस चंद मिनट की बात थी कुछ सोच पाते, इससे पहले ही... नहीं भूल पाते उस दृश्य को शिवेंद्र! बेड पर अचानक गिर पड़ी रागिनी भी कुछ कह नहीं पाई। रात का वक़्त और आस-पास कोई नहीं। वह एक बारिश वाली भयानक रात थी जब रागिनी घर के सभी कामकाज निपटा कर ऊपर चली गई थी, बेडरूम में... शिवेंद्र नीचे छूट गए थे और कोई प्रेस नोट तैयार कर रहे थे। कामकाज निपटा कर ऊपर गए तो रागिनी उन्हें मृत मिली...बेड पर लेटी...दोनों बाँहें सिर के पास... उन्होंने उसे सीधा करने की कोशिश की लेकिन तब तक काफी देर हो चुकी थी। इस घटना से स्तब्ध और चकित रह गए थे वे। वह एक भयानक अँधेरी रात थी....बारिश वाली रात! ख़ूब तेज़ बारिश और उतनी ही तेज़ आँधी। सन्नाटे को चीरती साँय-साँय करती हवाएँ... अचानक शिवेंद्र फूट पड़े और ख़ूब ज़ोर-ज़ोर से रोना शुरू कर दिये। जितनी तेज़ आँधी और बारिश उतनी ही तेज़ उनकी रुलाई। उन्हें लगा इस रात उनका रोना कोई सुन नहीं पाएगा... शायद आदमी के रोने के लिए भी माकूल वातावरण होना चाहिए। कुछ कह गई होती रागिनी, नीचे से आते वक़्त। रोज़ तो दोनों साथ ही आते थे। साथ आई होती तो कम से कम बात तो हो गई होती! उन्होंने पूजा घर से गंगाजल लाकर रागिनी के मृत शरीर पर, मुँह में डाला। उसकी माँग में सिंदूर लगाया और हाथ-पैर के नाखूनों पर नेलपालिश लगाई। तुम सुहागन बनकर जाओ रागिनी। तुम्हें विदा करता हूँ। उसके पाँवों को स्पर्श कर फूट-फूट कर रो पड़े। "मुझे माफ करना रागिनी। तुम्हारे लिए आज कुछ कर न सका और जीवन भर जो किया लगता है आज के दिन वह अकारथ गया। वे कब तक रोते रहे, उन्हें इसका ख़ुद पता न चला। बारिश ख़त्म हुई, आँधी का चलना बंद हुआ लेकिन शिवेंद्र इन सबसे बहुत बेख़बर सिर्फ रोते रहे... रोते रहे चार बजे सुबह तक... जब तक रागिनी की मृत देह श्मशान घाट तक न पहुँच गई।

यह एक चकित और स्तब्ध कर देने वाली घटना थी। आज भी शिवेंद्र को विश्वास नहीं होता कि किस तरह यह सब हुआ? इसे ही कहते हैं, मौत का दबे पाँव आना। जब वह आती है तब इसी तरह अचानक आती है और आदमी को उठा ले जाती है एक आदमी जो अपने घर परिवार और भरे पूरे कुटुंब के बीच होता है वह कितना अधिक असहाय और बेबस होकर रह जाता है? उसके पास रहने वाले यहीं छूट जाते हैं। कोई अकेले में मरना नहीं चाहता और जब मौत आती है तो अकेले ही आती है और जिसे ले जाना होता है, लेकर चली जाती है। रिश्ते, नाते, दोस्त, दुश्मन सब यहीं छूट जाते हैं। उन छूटते हुए पलों को आपस में जोड़ना कितना कठिन होता है जहाँ आदमी टूटकर बिखर रहा होता है। कितना मुश्किल होता है ख़ुद को सँभालना। कितना कठिन होता है ख़ुद को ख़ुद से ही सँभालना। दुख का कितना बड़ा साम्राज्य होता है जहाँ किसी की संवेदना किसी का सहारा, किसी का आश्वासन बिलकुल हमारे काम नहीं आता। न दिलासा, नहीं संवेदना, न सांत्वना, न ईश्वर, न वक़्त, न दिन, न रात। कोई भी नहीं। दु:ख आदमी के साथ-साथ जीता रहता है। ऐसे दारुण क्षण जब भी आते हैं जीवन में तो आदमी ख़ुद को ख़ुद ही सँभाल रहा होता है। इस क्रम में या तो वह सँभल जाता है या फिर टूटकर बिखर जाता है। इसके लिए किसी की प्रार्थना किसी की दुआ उसके लिए काम नहीं करती। बहुत गहरे कष्ट की वजह से वह चुप रहते अंदर ही अंदर अपनी खोयी हुई मानसिक शक्ति जुटाता रहता है उसी के सहारे वह ख़ुद को भी सँभालता है।

शिवेंद्र टूट गए थे। उन्हें लगता था मानों अब फिर से उठ नहीं पाएँगे। रागिनी के जाने के बाद उन्हें लगता है कि आदमी के जाने के बाद कितना कुछ छूट जाता है। कितना कुछ टूट जाता है। वह अपने हिस्से का सब कुछ कहाँ ले जाता है। सब कुछ तो यहीं छूट जाता है। उसके प्रयोग की चीज़ें, उसके वस्त्र, उसके आधे-अधूरे छूटे काम। उस आदमी की स्मृतियाँ दिल को नश्तर से चीरती हुई मानों। एक आदमी मरने के बाद भी हमारे सरोकारों में, हमारी स्मृतियों में कितना अहम होता है? कहते होंगे हमारे कर्मकांड कि एक मृत आदमी की मुक्ति के लिए कुछ बने-बनाए रीति-रिवाज निभाने पड़ते हैं... लेकिन क्या आदमी के चले जाने के बाद उसकी मुक्ति के साथ-साथ हम अपनी ही मुक्ति की राह नहीं तलाश रहे होते हैं? क्या हम अपने ही मोह-पाश से जीवन भर मुक्त हो पाते हैं? शिवेंद्र-रागिनी की एक-एक चीज़ में उसकी स्मृतियों की पहचान तलाशते हैं। पीछे छूट गई ये चीज़ें कितनी तकलीफ़ देती हैं आदमी को। रागिनी की चीज़ें जैसे उनसे तरह-तरह के सवाल कर रही हों... सच है यह कि एक आदमी को घर में ज़्यादा चीज़ें इकट्ठी नहीं करनी चाहिए। ये चीज़ें उसके कष्ट का कारण बनती हैं। भरी आलमारी में रागिनी के कपड़े, पूजाघर के पास रखे चार ट्रंक और उन सबमें कपड़े और सिर्फ कपड़े, दस-बारह जोड़ी चप्पलें, किचन में ढेर सारे बरतन जैसे एक घर में चार घरों के बरतन भरे पड़े हों... पूजाघर में तुलसी, रुद्राक्ष की झूलती मालाएँ, जैसे वो भी किसी का इंतज़ार कर रही हों। पूजा की पोथियाँ, हनुमान चालीसा, दुर्गा सप्तशती, गीता, रामायण, सत्यनारायण भगवान कथा की पोथी, लक्ष्मी जी के लिए अलग से पाठ... कई तरह की छोटी-छोटी पोटलियाँ जिनमें लौंग, मिश्री, इलायची रखी हुई। कपूर की कई डिबियाँ... जगह-जगह सिंदूर की पुड़िया, रागिनी के छोटे-छोटे बैग, यहाँ-वहाँ पड़े हुए जिनमें पैसे-रुपए रखे हुए। उसके जीते जी शिवेंद्र ने कभी

उसके पर्स या बैग नहीं देखे। अब जब वह जा चुकी है, तब उसमें वो यही सब देख रहे हैं। सच है यह कि आदमी चाहे जितने ही लोगों के बीच रहता हुआ आए, वह जीता अपने हिसाब से ही है। एक भरे-पूरे परिवार में भी एक आदमी सबके बीच रहते हुए भी अपनी तरह की ज़िंदगी जीता रहता है। उसके रहते हमें इसका पता नहीं चलता लेकिन जब हमारे बीच से उठ जाता है तब हमें इसका पता चलता है।

रागिनी का जीवन भी कुछ ऐसा ही था। उसने अपने जीते जी कितनी चीज़ों को इकट्ठा किया... सब कुछ रखती जाती थी। कभी ट्रंक में, कभी उन बक्सों में जिसे वह अपने घर से लायी थी और जिसमें घर की बूढ़ी औरतें कपड़े रखा करती थीं। उन बक्सों को खोलते ही एक आदम गंध पूरे वातावरण पर फैल जाती और लगता मानों बचपन की कोई परिचित गंध हो यह। हम अपने छुटपन से वही सब देखते आए हैं। यही सब देखते हम बड़े हुए हैं और उस आदम गंध को तरसते रहे हैं। छुटपन में हमारे घरों में दादी-नानी जिन काठ के बक्सों से हमारे लिए कपड़े निकाल कर देती थीं, तो ऐसी ही गंध निकलती थी जो पूरे घर में तैरती रहती थी। वही गंध रागिनी के बक्से में क़ैद होकर रह गई है। पता नहीं किस विश्वास के तहत वह सिर्फ चीज़ों को इकट्ठा करती थी। लेकिन उनका उपयोग नहीं करती थीं। आज जब वे नहीं हैं तो शिवेंद्र को बड़ी उदासी महसूस होती है और वे घंटों ख़ामोश रहकर भीतर ही भीतर कुछ पीते रहते थे। रागिनी के ज़िंदा रहते जब कभी उन्होंने उन चीज़ों के विषय में पूछा कि आख़िर वह नई चीज़ें उपयोग में क्यों नहीं लातीं और इस तरह इकट्ठा करके रखने का क्या फायदा? लेकिन उन्हें कोई ठीक जवाब नहीं मिला और शिवेंद्र अंततः चुप रह जाते। तरह-तरह के अचार... आम, कटहल, आँवला, नींबू का अचार। दुनिया भर के अचार बड़ी मात्रा में जब कभी शिवेंद्र पूछते तो बताती कि उनके जाने के बाद जब वे खाएँगे तब उन्हें याद कर लेंगे, वो आसमान से तृप्त हो जाएँगी!

यादों का सिलसिला पुरानी बातों से जुड़ता वर्तमान तक आकर इस दुपहर के वक़्त पर टिक जाता है। दुपहर का वक़्त हमेशा उनके बालकनी में बैठकर ठंड के दिनों में या तो स्वेटर बुनने का होता, या फिर बाज़ार से मँगाए गए चावल और दाल में से छोटे-छोटे कंकड़ निकालती रहतीं... हर वक़्त काम ही काम। एक नन्हीं चींटी की तरह पूरे दिन पूरे घर में दौड़ती रहती। हममें से किसे क्या चाहिए इसका पूरा ख़्याल रखतीं। पर्व-त्यौहार और परिवार में किसका बर्थ-डे कब है और गिफ्ट में क्या ख़रीदना है इसकी प्लानिंग वह पंद्रह दिन पहले से ही शुरू कर देतीं। किसे कौन-सा कपड़ा पहनना है या किसके शरीर पर कौन-सा रंग, कौन-सा डिज़ायन फब सकता है इसका भी वह खासा ख़्याल रखती थीं। शिवेंद्र के दोनों बच्चे अक्सर कहा करते कि उन जैसे पापा और रागिनी की तरह माँ का प्यार पाकर वे स्वयं को दुनिया के बेस्ट बच्चे मानते हैं। जब बालकनी में बैठती, तो उन्हें देखते ही पता नहीं कहाँ-कहाँ से कबूतर आकर उनके सामने बैठ जाते और वह चावल का दाना छींटती रहती। वे पास बैठ जाते और वह चावल का दाना छींटती रहती। वह उनके साथ बात भी करती और कबूतर भी उसका जवाब देते। आदमी और पक्षी में चाहे जितना फ़र्क हो लेकिन मुझे लगता है कि चेतना दोनों के पास एक-सी ही होती है।

शिवेंद्र यादों के गलियारे से बाहर निकलते हैं और घर के छज्जे पर फैलती गोधूलि वेला में मटमैली शाम को देखते हैं जो दिनभर की थकान लिये बैठी है। ऐसी मटमैली शामें मालदीव में अक्सर मिलती थीं। किराने की दुकानों से निकलती मसाले और तेल की गंध इस मटमैली शाम के साथ मिलकर हवा में एक अजीब-सी गंध घोलती थी और सड़क से गुज़रता आदमी बरबस ही अपना देश याद करने लगता था। ऐसी मटमैली शामें अक्सर ऐसे लगती हैं मानों हमारी आँखों में एक चुभन-सी हो रही हो। ऐसे दृश्य देखकर सहज ही यह प्रतीत होता है कि आँखों के लिये वही रंग ज़्यादा उपयोगी हो सकता है जिसकी वे अभ्यस्त हो चुकी होती हैं।

और उदासी का भी अपना एक अलग रंग होता है। वही रंग उसे ख़ूबसूरती प्रदान करता है। अजब बात तो यह है कि सौंदर्य शास्त्री अब तक तय नहीं कर पाए हैं कि उदासी के ऊपर कौन-सा रंग फबता है? शायद उसका एक अपना अलग ही रंग होता है, जो रंग विहीन होता है। उदासियाँ भी आनंद देती हैं, जब हम उसके साथ अनवरत बहते रहते हैं। किसी की यादों को जीना... शाम के ख़ाली वक़्त बालकनी में बैठे बियर सिप करते अतीत को जीना या फिर किसी आत्मीय को उसके साथ जुड़ी यादों को जीना। शिवेंद्र अक्सर ऐसा करते। बालकनी में आते तो शाम को ही। ठंड के दिनों में उनकी दुपहर कभी-कभी इसी बालकनी में बीतती... उस वक़्त बियर को सिप करते रहते... गर्मियों में उनकी शामें व्हिस्की के साथ गुज़रतीं और उन्हें लगता मानों शाम ठीक उनके सामने बैठी बात कर रही हो। व्हिस्की जैसे-जैसे बढ़ते पेग के साथ उनके हलक़ में उतरती, उन्हें लगता मानों अतीत पर, या किसी की यादों के जीते वे अधिक अंतरंग हुए जा रहे हैं। रागिनी के रहते उन्हें उदासी का इस रूप में कभी भी साक्षात्कार नहीं हुआ था या उन्होंने सोचा नहीं था लेकिन अब उन्हें लगता है, मानों इस पल को भी सोचा जा सकता है या सोचना चाहिये।

शाम हो चली थी और बालकनी के जिस हिस्से पर अस्ताचल सूरज की किरणें पड़ रही थीं, अब वहाँ पेड़ की पत्तियों की छाया लौट गई थी। शिवेंद्र व्हिस्की पी रहे थे और इस शाम की उदासी भी जज़्ब कर रहे थे। शाम के वक़्त यह बालकनी भी कितनी ख़ाली और उदास नज़र आती है, मानों इसकी दीवार के साथ जो कमरा है वह इसे अपना नहीं पाता और बाहर के हिस्से छोड़ चुका है लेकिन इस बाहर के हिस्से को शिवेंद्र बिलकुल अपना हिस्सा मानते हैं। अपने दिल के करीब। शिवेंद्र ने रागिनी की कमी यहीं महसूस की है, जब भी वे इस बालकनी में आए हैं या आते हैं तो उनका मन कितना ख़राब हो जाता है। यहाँ उनके आने का भी कोई निश्चित समय नहीं है। मन का आवेग जब कहीं से बाहर निकलने को होता है, तब वे यहीं आ जाते हैं। वह वक़्त सिर्फ शाम का ही वक़्त नहीं होता। वह दिन की

दुपहरी भी हो सकती है, शाम का भी समय हो सकता है और रात का कोई भी पल क्योंकि रात का पल सबसे भारी होता है जो गुज़रने का नाम ही नहीं लेता। इसी बालकनी में वह रागिनी के साथ ख़ाली समय बिताया करते थे लेकिन समय ख़ाली कहाँ मिलता था? वहाँ भी तो रागिनी कोई न कोई काम ही किया करती थी... काम भी करती थी और उनका साथ भी नहीं छोड़ती थी। कितना निर्मल, कितनी पवित्र और कितनी निर्दोष थी रागिनी। अभी उसके जाने के बहुत दिन नहीं बीते कि इतनी जल्दी उसके न होने को हम अतीत मान लें। कितनी जीवंतता थी यहाँ के वातावरण में? जहाँ खड़ी रहती वहीं से एक सकारात्मकता बिछ जाती और घर चहकने लगता।

शिवेंद्र के लिए उनके दफ्तर से फ़ोन आया था। दिल्ली के रमेश नगर इलाके में अचानक दो ग्रुप में दंगा हुआ था जिसकी रिपोर्टिंग करनी थी उन्हें। प्रेस नोट बनाना था। वे निकलने की तैयारी करने लगे। मन भर आया। उस रात भी तो वे प्रेस नोट ही तैयार कर रहे थे... पड़ोस में ही एक लड़की ने आत्महत्या की थी... पुलिसवाले आए थे, छान-बीन हुई थी। बहुत बेमन से उन्होंने प्रेस नोट बनाया था और उसी रात रागिनी... फिर मन भर गया था उनका और लगा मानों रागिनी ऊपर से ही ज़ोर-ज़ोर से उनका नाम पुकार रही हो। उन्हें लगा, उन्हें ऊपर जाना चाहिए लेकिन हिम्मत नहीं हुई। वे क्यों नहीं मान लेते कि जिन हाथों से उन्होंने रागिनी की चिता जलाई है वह अब नहीं है। इस संसार में अब वह नहीं है। यही सच है। सोचते हुए शिवेंद्र बाहर निकल गए।

इस रात ने रमेशनगर को मानों राख से भर दिया है। दूर-दूर तक भागते, हाँफते और गिरते पड़ते लोग। एक बदहवास भीड़ पता नहीं कहाँ से शुरू हुई है और कहाँ ख़त्म होगी? पुलिसवाले भारी संख्या में अपनी ड्यूटी कर रहे हैं या फिर तमाशा देख रहे हैं यह बात समझ में नहीं आ रही। रात के इस प्रथम प्रहर में ही लगता है आधी रात बीत चली है। मार-धाड़, मारो-मारो, पीटो-पीटो... एक-दूसरे पर पत्थर फेंकते लोग और पता नहीं यह सब किस दिशा की ओर भाग रहे हैं। एक अजब-सा वहशीपन चारों तरफ। घटना की वजह क्या है? शिवेंद्र पुलिस महकमे के एक वरिष्ठ अधिकारी के पास पहुँच जाते हैं और कारण पूछते है। उसके बयान को क़लमबंद करते हैं और निकल जाते हैं। घर पहुँचते हैं। रात का खाना खाया नहीं जाता और दूध का एक गिलास ख़ाली कर जाते हैं। रात-बेरात जब इसी तरह वे कहीं बाहर से रिपोर्टिंग के बाद आते थे, तो रागिनी काँप जाती थी... जब बाहर जाते और वह भी रात के वक़्त तो लौटने पर उसे लगता मानों उनका लौटकर आना एक असंभव-सी घटना हो। हाल के दिनों तो उन्हें रोकने लगी थी..."मत जाइए कहीं भी आप। मन बहुत घबराता है मेरा। पता नहीं चलता कि आप लौटकर आएँगे भी या नहीं? मेरा मन अंदेसे में डूबा रहता है और मैं ख़ुद में ही डूब जाती हूँ... लगता ही नहीं कि उबर पाऊँगी।" उस वक़्त शिवेंद्र बहुत ही असहज हो जाते थे। रागिनी का यह सोचना ऐसा क्यों है? क्या वह भयभीत हो रही है ज़िंदगी के ख़त्म होने को लेकर या अपनी मौत का अंदेशा हो रहा है उसे? यह सोचकर शिवेंद्र लगभग टूट से जाते भीतर ही भीतर कुछ रिसता रहता उनके और वे फिर उसी बालकनी में चले जाते जो शायद उन्हीं का इंतज़ार कर रही होती। धीरे-धीरे उन्हें ऐसा लगने लगता मानों वह मौत के अनजान भय से परेशान हो रही है... कभी-कभी पूरे दिन की व्यस्तता के बाद जब बीती शाम या लगभग रात के वक़्त वे घर लौटते तो रागिनी मकान के मेन गेट पर खड़ी उनका इंतज़ार कर रही होती। एक रोज़ जब वे इसी तरह बालकनी में बैठे सिगरेट पर सिगरेट फूँके जा रहे थे तो अचानक ख़याल आया कि उनके दफ्तर की सहकर्मी शालिनी के भेजे मेल का उन्होंने जवाब अब तक नहीं दिया। महीनों से आलमारी में रखे अपने लैपटाप को निकाला लेकिन लैपटाप निकालते ही आलमारी में रखी कई चीज़ें भरभराकर गिर पड़ीं। पहले तो कुछ क्षण देखते रहे फिर वहीं बैठकर एक-एक चीज़ निहारते रहे। सब रागिनी की रखी चीज़ें थीं...कपड़े के बने कुछ थैले और उनमें स्नो, पाउडर, लिपिस्टिक, बिंदी, सिंदूर, कुछ कलम, कंघी और चूड़ियाँ। एक थैले की छोटी-सी गठरी में पाँच सौ रुपये का नोट और उसके साथ धनिया, सुपारी, लौंग, कुछ सिक्के। एक थैले में उन भगवान् की छोटी-छोटी फ़ोटो जो अक्सर फुटपाथ की दुकानों में मिल जाती हैं। कुछ पहले के खरीदे टूथब्रश। वे इन चीज़ों को सहेजने लगे। अचानक एक बड़ा सा पर्स मिला जिसे उन्होंने खोला तो उसमें पाँच सौ, दो हज़ार के कई नोट। एक पर्स में सौ-सौ के नोट। शिवेंद्र सोचते रहे, जाने कब से रागिनी इन्हें समेट-समेट कर रख रही होगी। ख़र्च एक पैसे का नहीं करती थी शिवेंद्र से बगैर कुछ पूछे। ज़रूरतें उसकी थीं भी कहाँ? कुछ नहीं चाहिए था रागिनी को। अक्सर कहा करती कि उसे जब चाहिए था, या हमें जब चाहिए था तब तो हम धूल फाँकते रहे थे। अब सब कुछ है तो हमें इनकी कोई ज़रूरत ही नहीं है। आदमी एक उम्र के बाद अपनी सभी इच्छाएँ मार लेता है, या उसकी तमाम इच्छाएँ मर जाती हैं। उन पैसों का क्या करना जो अभी-अभी उन्हें मिला है? ये वही पैसे हैं जो शिवेंद्र रागिनी को अक्सर दिया करते थे और वह उन्हें कहीं रख देती थी। रखने का कोई निश्चित ठिकाना नहीं था। किसी भी जगह, किसी आलमारी में, किसी बक्से में, किसी बटुए में पैसे पड़े मिलते। और तब शिवेंद्र सोचते कि एक आदमी जब चला जाता है तो कितना दर्द, कितना कष्ट छोड़ जाता है जिसे झेलने वाले झेलते रहते हैं चाहे जिस किसी भी तरह...

साल भर मौसम आते-जाते, धूप आती, छाया आती, बारिश होती, गर्मी पड़ती... बसंत भी आता, शरद भी, शिशिर ऋतु भी लेकिन रागिनी अपनी भक्ति नहीं भूलती। ईश्वर की भक्ति में डूबती-तैरती आँखों में पूजा और प्रार्थना। ईश्वर सबको सुखी रखो। कोई दु:खी न हो और कोई हो तो वह दुख मुझे दे देना। उस दुखी आदमी के लिए दुआएँ और आशीर्वाद मैं तुमसे माँग लूँगी और तुम पूरे आँचल भर देना। इतनी पवित्र भावना कि ईश्वर भी मजबूर हो जाए। जब पर्व-त्यौहार आते, तो वह इनको अच्छी तरह मनाने को ही अपना परम कर्त्तव्य मान लेती और घर

ख़ुशियों में नहाता रहता। लगता, हम एक ऐसी दुनिया में रह रहे है जहाँ दु:ख, कष्ट, तकलीफ़ का कोई नामो निशा नहीं। अब उन्हीं भरी हुई जगहों में उसका न रहना हमें कितना ख़ाली कर गया है?

जो यादें सताती रहती थीं और जितना ख़ालीपन महसूस होता था शिवेंद्र को उनसे निपटने का कोई रास्ता अब नहीं बचा था। उन्होंने बहुत गहराई से ऐसा महसूस किया, मानों उन ख़ाली जगहों को एक न टूटने वाली चुप्पी और गुम उदासी ने अपने सूनेपन में ले लिया है और वे जगहें ख़ाली होती हुई भी ख़ाली नहीं हैं। घर का कोई कोना ख़ाली और सूना नहीं है। वहाँ भी कोई है। बाहर से जब भी लौटकर आओ तो ऐसा लगता है मानों घर के भीतर उदासियाँ अपना जश्न मना रही हैं और कह रही हैं कि उदासी भी ख़ूबसूरत होती है। शिवेंद्र को जीना तो है...आगे पूरा जीवन पड़ा है, चाहे इसे जिस तरह जी लें। इसे सज़ा मानें या वक़्त की सौगात या कुछ भी। यह तो निर्जन टापू सा है जिसमें रेत के बगूले ही हैं चारों तरफ। अचानक कहीं से एक गुमनाम-सी हवा आती है, साथ में धूल और मिट्टी के अदृश्य कण लिए और शिवेंद्र की आँखें मिचमिचाने लगती हैं... शब्द झिलमिल करते रहते हैं जो उनके प्रेस नोट पर लिखे चल रहे हैं। इन शब्दों से भी पता नहीं एक उदासी झर रही है... ऐसी ही उदासी उन्हें तब भी महसूस होती थी जब शिवेंद्र अपने अध्ययन कक्ष में चुपचाप गई रात तक रागिनी के महाप्रस्थान पर सोचते रहते थे। वे जानते थे कि अब, जब कि वह नहीं रही, तो कुछ सोचना व्यर्थ है लेकिन आदमी का मन सबसे ख़राब होता है। इससे अधिक चंचल कुछ भी नहीं। आदमी चाहे तकनीकी रूप से जितनी तरक्की कर ले लेकिन मन पर किसी ने काबू नहीं पाया अब तक। शिवेंद्र सोचते हैं कि कहीं निकल जाएँ लंबे टूर पर लेकिन कहाँ? अभी जो वे तीन महीने पूर्व रागिनी के कर्मकांड पर बेटे के पास बैंगलोर गए थे तब कितना परेशान हुए थे? जब जाने की तैयारी कर रहे थे और अपने कपड़ों को अटैची में रख रहे थे तब कितना परेशान हो गए थे। उनके कपड़ों के साथ-साथ रागिनी के कपड़े भी आ जाते थे। उसके कपड़ों को अलग करते कितना टूट-टूटकर बिखरते हुए रोते रहते थे। सोचते रहते थे कि जिस जगह पर घूमने-फिरने के लिए बच्चों के पास रागिनी के साथ-साथ जाते थे, अब उसी जगह वे क्या लेकर जा रहे हैं? रागिनी की राख सी स्मृति और उसके लिए किया जाने वाला कर्मकांड? किसकी मुक्ति और किसके लिये मुक्ति? क्या वह ज़िंदा रहते ही मुक्त नहीं हो पायी थी? जिसकी कोई सांसारिक इच्छा ही नहीं और जिसने अपना जीवन दूसरों के लिए होम कर दिया, क्या वह मुक्त नहीं है? जिसने किसी का कभी कोई अहित नहीं किया क्या वह अनाहिता नहीं? लेकिन एक आदमी के मरने के बाद वह सारे कर्मकांड करने होते हैं, जो हमारी परंपरा और पुरातन संस्कार में बरसों से चलते आए हैं।

अतीत के साथ हम कितने जुड़े होते हैं जब हमारे अपने हमसे विदा होते हैं! यह अतीतजीवी होना नहीं होता बल्कि पीछे से ख़ुद को ही देखना होता है। क्या ऐसा नहीं होता कि हम ख़ुद को ही ख़ुद से देखते चलते हैं। हमारी स्मृति में सबसे पहले हम ही तो आते हैं तब कुछ देर या कुछ दिन सोचने के बाद ऐसा लगता है मानों हम वह नहीं थे जो आज हम देख रहे हैं ख़ुद को! फिर वह कौन था? वह हमारी रहस्यमय छाया थी जो साथ चल रही थी... संघर्ष के दिनों में भी वही हमारे साथ होती है। बचपन से हमारे पीछे-पीछे चलती हुई लगातार... जैसे कोई हमारा हमसफ़र हमारे पीछे-पीछे चल रहा हो...

और रागिनी भी कहाँ से आई थी... उसकी छाया उसे जिस तरह उम्रभर चलाती रही, वह चलती रही...वही छाया उसे कहीं ले गई। हमें नहीं पता, वह कहाँ गई और उसे भी क्या पता? अगर पता ही होता तो अकेले क्यों जाती ऊपर? मौत ने बुला लिया और अपने साथ चल पड़ी। आदमी का जीवन क्या इतना ही बड़ा होता है? एक जन्म तिथि और दूसरी पुण्यतिथि! बस। बीच की तारीख़ें तमाशा के लिए ही होती हैं। हमारा जीवन भी तो एक तमाशा ही होता है। उस तमाशे का अंत कभी तमाशे के साथ हो जाता है, कभी उदासी के साथ।

देहरादून पहुँचे थे शिवेंद्र। कुछ दफ्तर संबंधी ज़रूरी काम थे। जब पहुँचे तो जैसमिन रेज़िडेंसी में रुके। जब भी वे दफ्तरी काम से या ख़ुद की विज़िट पर भी आते तो यहीं रुकते थे, इसी होटल में। इस होटल की याद को कभी नहीं भूलने देते। रागिनी से उनकी पहली मुलाकात यहीं हुई थी... वह भी अपने किसी ज़रूरी दफ्तरी काम से यहाँ आई हुई थी और इसी कमरे में रूम नं. बारह में वे मिले थे। पहली बार वे इस कमरे में अकेले ठहरे हैं रागिनी के जाने के बाद पहली बार। सब कुछ तो वैसा ही है... बिलकुल पहले की तरह। उन्होंने ज़रा ध्यान से होटल के इस कमरे को देखा तो पाया कि शायद उनके मन की तरह यह भी कुछ उदास और ख़ामोश दिखता है। दीवारों पर उन्हीं दिनों की तरह चमकती पच्चीकारी थी लेकिन वे अब मद्धिम सी दिखती हैं। पच्चीकारी के सौंदर्य बनाते रंग अब कुछ फीके से दिखने लगे हैं। उन्होंने बेड पर लेटते ऊपर की ओर देखा तो लगा छत का सफेद रंग भी फीका पड़ गया था, या उन्हें ही ऐसा दिखता था...कुछ समझ नहीं पा रहे थे। कुछ देर विश्राम में बिताया। शाम हुई तो नीचे लॉबी में आकर बैठ गए।

यहाँ समय पानी की तरह बह रहा था। टूरिस्ट आते थे, टूरिस्ट जाते थे। चहलक़दमी का माहौल था। रिसेप्शनिस्ट बहुत सक्रिय होकर अपना काम कर रही थी। वह एक गोरी-चिट्टी-सी ख़ूबसूरत लड़की थी। लाल रंग की स्कर्ट में वह एकदम ताज़ा दिखती थी जैसे अभी-अभी वाशरूम से फ्रेश होकर आई हो। उसे देखकर शिवेंद्र को ऐसा लगा मानों उसने आज ही जॉब ज्वाइन किया हो और आज उसका पहला दिन हो। फिर सोचा कि इस तरह ताज़ा दम दिखना और सक्रिय होना तो इनके जॉब का हिस्सा होता है। उस रिसेप्शन टेबुल के साथ एक अधेड़ किस्म का टूरिस्ट खड़ा था जिसके कंधे से झूलता एक सफ़री झोला था। वह अधेड़ शिवेंद्र की तरफ देखते हुए अपने कमरे की प्राप्ति की औपचारिकताएँ पूरी कर रहा था...मसलन, आइ.डी. प्रूफ़, एड्रेस प्रूफ़, आधार कार्ड की

कॉपी वगरैह-वगैरह। अधेड़ आदमी और शिवेंद्र एक-दूसरे को देखते यह अनुमान लगाते रहे कि शायद दोनों कहीं परस्पर मिले हैं और साथ-साथ तीन-चार दिन गुज़ारे भी हैं लेकिन कहाँ और किस संदर्भ में इसका अनुमान दोनों लगा न सके। कभी-कभी ऐसा ज़रूर होता है जब दोनों एक-दूसरे को देख रहे हों और पता न चले कब, कहाँ मिले हैं और जब तक स्मरण शक्ति पर ज़ोर डालें तब तक देर हो जाए। दोनों में से एक कहीं निकल जाए या दोनों ही अलग-अलग हो जाएँ। शिवेंद्र को यहाँ लॉन में कोई काम नहीं था... बस जो टूरिस्ट आते और दूसरे लोगों से जो यहाँ चहल पहल थी उसी के कारण उन्हें लगता कि जीवन यहाँ है। कमरे के दमघोटू वातावरण से मुक्त। अचानक उनके मन में आया कि बाहर निकलकर गार्डन की सैर करनी चाहिए और शाम जब घिरने-घिरने को हो जाए तो होटल से दूर किसी रेस्त्राँ में बैठकर बियर या व्हिस्की लेनी चाहिए। इस विचार से वे उठ खड़े हुए तो घुटने में हल्का दर्द महसूस हुआ। वे मुस्कराए। रागिनी कहा करती थी कि किसी भी जगह देर तक न बैठिए... या तो कुछ देर बैठने के बाद खड़े हो जाएँ या फिर टहलने लग जाएँ फिर इस तरह का दर्द नहीं होगा। उनकी यह मुस्कान सामने से आती उस लेडी टूरिस्ट की मुस्कराहट से जा मिली, जो उन्हीं की तरफ बढ़ती हुई रिसेप्शन डेस्क की तरफ बढ़ी चली आ रही थी। एक अनजान टूरिस्ट का इस तरह मनमोहक मुस्कान में उन्हें देखना, उन्हें कुछ आश्चर्य में डाल दिया। उन्होंने पीछे मुड़कर देखा कि क्या पता उनके पीछे उस लेडी टूरिस्ट की पहचान का कोई खड़ा हो लेकिन वहाँ कोई नहीं था। उन्होंने तय किया कि इस पर कुछ सोचना ठीक नहीं है क्योंकि कुछ चेहरे होते ही ऐसे हैं, जो सदा मुस्कराते हुए पाए जाते हैं। ऐसे चेहरों को देखकर शिवेंद्र को पहले तो प्रसन्नता अनुभव होती थी लेकिन कुछ ही देर बाद वे गंभीर होकर सोचने लगते कि ऐसा हो ही नहीं सकता कि एक व्यक्ति हमेशा ख़ुश ही दिखे। ऐसे लोग जो हमेशा अपने चेहरे पर मुस्कराहट लेकर पब्लिक प्लेस पर नज़र आते हैं, शायद ये लोग या तो फ़ेसबुक की दुनिया के लोग होते हैं या फिर वे जिन्होंने जीवन के संघर्ष का कोई अनुभव प्राप्त नहीं किया। वह लेडी टूरिस्ट ग़ज़ब की सुंदर थी और अगर न भी मुस्कराए तो भी उसकी ख़ूबसूरती कम नहीं पड़ने वाली थी। वे पता नहीं क्यों लॉज में रुक गए और सोफे पर बैठ गए। वह रिसेप्शन टेबुल पर स्वागत अधिकारी के साथ बातचीत करती विज़िटिंग रजिस्टर पर हस्ताक्षर करती है। ऐसा करते वह कुछ याद कर रही है, ऊपर की ओर देखते... शायद तारीख़ आज की तारीख़। मोबाइल पर्स से निकालती है और किसी के साथ बात करती है। अब इत्मीनान होकर बाहर लॉज में आती है और ठीक शिवेंद्र के पास ही बैठ जाती है यानी उसी सोफे पर दूसरी ओर! वह अपना सूटकेस खोलती है लेकिन शायद कोड नंबर भूल गई है। बार-बार बटन घुमाती है लेकिन निष्फल होकर हारने लगती है। सहायता के लिए उसकी नज़रें इधर-उधर घूमती रहती हैं, हवा में स्थिर टँगी उसकी आँखें, उन आँखों में किसी जाने-पहचाने आदमी की तलाश है या कोई एक अजनबी ही सही जो उसकी सहायता कर दे। अगर कोड नं. का मामला नहीं सुलझा तो कोई उसका सूटकेस कहीं से चाबी की व्यवस्था करके खोल दे। लेकिन किसी का ध्यान नहीं जाता। इस बीच उस टूरिस्ट ने शिवेंद्र की ओर देखा जो शून्य में देख रहे थे। शून्य में देखते वे किसी घटना को मरते हुए देख रहे थे। उसने उनसे पूछा..."क्या आप मेरी एक सहायता कर सकते हैं?"

"जी, बताइए।"

"मेरे सूटकेस का लॉक कोड मैं भूल रही हूँ, वह तो मिलने से रहा लेकिन इसे ओपन करना है। क्या आप मेरी सहायता कर सकेंगे?"

शिवेंद्र ने उस सूटकेस को देखा...ट्रिपल जीरो फिक्स किया और सूटकेस खुल गया।

"कैसे आपने कर लिया?" उसके पूछने पर शिवेंद्र ने पूछा..."क्या आपका नाम जान सकता हूँ?"

"मेरा नाम दीपाली है। दीपाली वर्मा। दिल्ली से हूँ। वहाँ मेरा पब्लिकेशन हाउस है। दीपाली पब्लिकेशंस। मेरे पापा ने शुरू किया है।"

"आप?"

"मैं शिवेंद्र हूँ। मैं मीडिया परसन हूँ। दैनिक 'युगांत' में रिपोर्टिंग करता हूँ। मैंने 'दीपाली पब्लिकेशंस' का नाम सुना है।"

"अच्छा मैं चलूँ। ज़रा कमरे में शिफ्ट कर जाऊँ?" जब वह चली गई तो शिवेंद्र सोचते रहे कि यहाँ तीन दिन के लिए आए हुए हैं, तो एक दोस्त मिल गई जिसके साथ कुछ पल बिताना बहुत सुकून भरा हो सकता है। यह सोचते ही अचानक वे ख़ुश हो आए और उस सड़क को देखते रहे जो दिन भर के ट्राफिक में फँसी होने के बाद अब दूर-दूर तक सूनी-सूनी सी दिख रही है। उसके अचानक सूना-सूना होने के कारण वे भी उदास-से हो गए और उन्हें लगा कि न वे, न वह सड़क बल्कि यह मौसम भी उदास दिख रहा है। वह आकाश भी जो हल्के-हल्के बादलों के बीच हल्के लाल रंग का दिख रहा है लेकिन धीरे-धीरे मटमैले रंग में विलीन होता लग रहा है। यह दृश्य बड़ा उदासी का रंग घोल रहा है तन-मन में। वे उधर से हट गए और लॉन की तरफ मुड़ गए जहाँ रंग-बिरंगे फूल खिले थे।

"हाय, क्या कर रहे हैं आप?" शिवेंद्र ने पलटकर देखा दीपाली थी।

"आप अपने कमरे में शिफ्ट कर गईं?"

"हाँ, शिफ्ट कर गई। रूम नं. तेरह में।"

"अच्छा? मैं रूम नंबर बारह में हूँ।"

वह हँस पड़ी। कहा...संयोग है। यह भी संयोग है कि हम मिले हैं। और यह भी संयोग है कि आपके कोड से मेरा सूटकेस खुल गया। वैसे आपने किस तरह किस कोड का प्रयोग किया?"

"शून्य...तीन बार शून्य।"

"आपको कैसे पता कि इसका कोड नंबर ट्रिपल जीरो है?" वह हल्के मुस्कराई। लगा, उसके साँवले सलोने चेहरे पर सावन की घटा घिर आई हो। या नवंबर की धूप खिल आई हो। शिवेंद्र उसका सौंदर्य कुछ देर तक यों ही देखते रहे और सोचते रहे कि शायद ऐसा सौंदर्य अगर क्षण भर भी देखने को मिले तो जीवन अकारथ न बीते। कहा उन्होंने..."मुझे

क्या पता कि कोड क्या है। मैं ऐसे ही करता हूँ। मेरे सभी सूटकेस का कोड ट्रिपल ज़ीरो ही है तो सोचा कि वही ट्राई कर लेते हैं।" वे हल्के मुस्कराए तो वह भी मुस्करा दी।

"आपको खाने-पीने में क्या पसंद है?"

यह आवाज़ दीपाली की थी। उन्होंने पलटकर देखा उसे और पल भर देखते रहे। इस आवाज़ में ग़ज़ब की आत्मीयता और ममता थी...स्वर जैसे शहद टपक रहा हो। ऐसी आवाज़ तो बहुत निजी हो सकती है... और खाने-पीने की बात पूछना? लेकिन क्यों पूछना? यह सवाल तो वह करता है जो ख़ुद ही किसी के लिए खाना बनाने जा रहा हो। तनिक चकित होते कह गए..."क्यों? क्यों पूछ रही हैं आप?" वह बोली..."मैं आपकी डाइनिंग टेबल शेयर करना चाहती हूँ अगर आपको मंज़ूर हो तो?"

"ओह श्योर। माई प्लेज़र। लेकिन हम वहीं ऑर्डर करेंगे न? जहाँ यह सब कहने का कोई प्रयोजन नहीं बनता।"

"आप रिपोर्टिंग के लिए आए हैं?"

"हाँ, ठीक समझा आपने।"

"आप?"

"नैशनल सेकेंड्री स्कूल के ऑडिट के लिए आई मेरे साथ तीन लोगों की टीम है। वे दूसरे-दूसरे कमरों शिफ्ट हैं। मुझे यह जानकर बहुत अच्छा लगा कि मैं तेरह नंबर कमरे में हूँ जब कि आप बारह नंबर में हैं।"

"लेकिन इसमें अच्छा लगने वाली कौन-सी बात है? रूम तो इसी तरह अलग-अलग होते हैं।"

"हाँ। इसी तरह अलग-अलग होते हैं... पास के कमरों से हमारी साँस, उच्छ्वास, आँसू, खुशी सब दूसरे कमरों तक पहुँचते रहते है।"

"ओह, आप ज्योतिषी या जादू-टोना जानती हैं, क्या,?"

"नहीं ऐसा नहीं है। बस महसूस करती हूँ। आप भी अगर महसूस करेंगे तो यही लगेगा। ऐसा ही लगेगा।"

"क्या आपने कभी ऐसा महसूस नहीं किया?"

उसने अपनी आँखें शिवेंद्र के चेहरे पर टिकाते कहा..." आप कभी महसूस कीजिए। उसके ऐसा कहने से शिवेंद्र कुछ असहज हो आए।"

डिनर दोनों ने साथ ही लिया। दीपाली कुछ बोलती रही और वह सुनते रहे। शिवेंद्र को यह अच्छा नहीं लग रहा था कि वह इस तरह की कोई बात करे जो अवांतर प्रसंग की तरह लगे। इसलिए उन्होंने चुप्पी साध ली और होटल के बाहर अचानक आ गई बारिश को झरते हुए देखते रहे। उनका इस तरह बारिश को देखना अच्छा लग रहा था। उन्होंने डायनिंग टेबल छोड़ी और फिर लॉज में आ गए। शीशे के फ्रेम में लगी उस लम्बी दीवार के पास बैठ गए जिसके बाहरी हिस्से पर बारिश की बूँदें जम गई थीं। इनमें कुछ बूँदें आपस में मिलकर चींटी की तरह रेंगती नीचे की ओर चली गई थीं, जहाँ एक पतला रास्ता बन गया था।

बेडरूम!

एक नीले ज़ीरो वाट बल्ब की हल्की महिम-सी रौशनी जैसे बहुत महीन साफ धुँआ फैल गया हो लेकिन देखने में बड़ा सुंदर लगता हो। सफेद-सफेद बेडशीट और तकिया। साफ तकिया... जैसे नीले आकाश के नीचे जमी रूई की फाहे हों। खिड़कियाँ बंद और एसी शुरू... शिवेंद्र को पहले झपकी आती रही, फिर सो गए लेटे-लेटे से। नई जगह पर नींद कहाँ आती है? उसी कमरे में वे रागिनी के साथ ठहरते थे। जान बूझकर यह नंबर लिया उन्होंने। अब उन्हें लगता है कि उनका यह निर्णय ठीक नहीं था। यहाँ होने का मतलब है, बीते दिनों को सोचना और परेशान होना... उन्हें झपकी आने लगी और उन्हें लगा अब गहरी नींद भी आ जाएगी।

लेकिन ऐसा बिलकुल नहीं हुआ। झपकी आई ही थी कि वे चौंक कर बेड पर बैठ गए। उन्हें महसूस हुआ कि कोई उनके ठीक सामने अचानक आकर खड़ा हो गया है। उन्होंने बत्ती जलाई तो आश्वस्त हुए कि यह महज उनका भ्रम था कि कोई है। यह कैसे हो सकता है। और अगर कोई वास्तव में होता तो रौशनी जलाते ही वह प्रकट क्यों नहीं हो जाता? शायद उन्हें ऐसा आभास हुआ हो... उन्होंने बत्ती बुझाकर आँखें मूँद लीं। लेकिन फिर वही सब... इस बार कोई दरवाज़ा खटखटा रहा है। बत्ती उन्होंने फिर जलाई तो पहले की तरह ही वहाँ कोई नहीं था... फिर झपकी लेने की प्रक्रिया शुरू हुई। इस बार बत्ती नहीं बुझाई थी। लेकिन चंद मिनटों बाद लगा कि उन्हें ज़ोरों की प्यास लग आई है। हड़बड़ा कर उठे तो सही लेकिन प्यास तो लगी ही नहीं थी? वे खड़े होकर कमरे के बाहर के गलियारे में चलहक़दमी करते रहे...शायद मन कहीं स्थिर हो, नींद आ जाए। मन में आया कि मैनेजर के पास जाएँ और दूसरा कमरा बदल लें। घड़ी की ओर देखा तो बारह बज रहे थे...सोचा कि टाल देना ठीक है। कोशिश करते हैं कहीं नींद आ जाए। लेकिन नींद कहाँ आ रही है। उन्हें दीपाली की बात याद आने लगी लेकिन ऐसा तो कुछ नहीं कि दीपाली के कमरे से कोई तरंग यहाँ तक आए? यहाँ तो लगता है कि कोई मृतात्मा शायद उनकी तरफ बढ़ी चली आ रही है। वह बढ़ती है और उनके पास आती है, फिर चली जाती है। वह अकेले ही आती है और अकेली ही चली जाती है। तो क्या उन्हें देहरादून के जंगलों में नहीं जाना चाहिए? और क्या उन जंगलों में जाने की वजह से ही कोई नकारात्मक शक्ति उनके साथ-साथ यहाँ तक चली आई है? कुछ कहा नहीं जा सकता।

बेड पर लेटे-लेटे उन्होंने सिगरेट सुलगाई और धीमे-धीमे उसका धुँआ पीते रहे। यह भी सोचते रहे कि इस तरह सिगरेट पीने से तो उनकी नींद में खलल पड़ेगा। लेकिन जब तक सिगरेट न पीलें, तनाव कम नहीं होता...

रात का दूसरा पहर!

शिवेंद्र को नींद आ गई। इस बार किसी अदृश्य शक्ति ने ही उन्हें सुला दिया और न जागने को मजबूर किया। एक भ्रम, एक छाया या एक माया ठीक उनके साथ सो रही है और उनके शरीर को धीरे-धीरे मोह-पाश में बाँधकर कस रही है... वह न तो उठ पा रहे हैं, न ही करवट बदल पा रहे हैं। बस चित्त लेटे छत की तरफ देख रहे हैं। उनकी चेतना पूरी तरह काम नहीं कर रही, वे अर्धचेतन की अवस्था में हैं। बड़ी विचित्र स्थिति है। और जो स्थिति है, वह जानते ही नहीं कि वे ज़िंदा हैं तो

कब तक और मृत हैं तो कब मौत ने उनका दामन पकड़ लिया? वे फिर जागकर बैठ जाते हैं। वे बहुत परेशान हैं और परेशानी का सबसे बड़ा आलम यह है कि वे पसीने से तर-ब-तर हो गए हैं। कमरे में चालू एसी उनके लिए निष्प्रभावी है। और उन्हें लगता है मानों उनके चारों तरफ लम्बी-लम्बी चिताएँ जल रही हैं, उनका धुआँ सीधा उनके पास चला आ रहा है।

उस सुबह दीपाली नहीं मिली। शिवेंद्र ने उसे तलाशने की कोशिश भी न की थी... बस ब्रेकफास्ट के बाद लॉज में बैठे-बैठे उसके बारे में सोच रहे थे। फिर उन्हें लगा कि उसके बारे में सोचने को ऐसा क्या है आख़िर जो सोचा जाए? लेकिन उन्हें लगा कि यह सोचना हवा के हल्के झोंके की तरह है...स्मृति जो दो दिन की थी एकदम संक्षिप्त और अवांतर कथा-सी... वैसे शिवेंद्र को उस रहस्य को भेदना था जिसके बारे में दीपाली कह गई थी। चाहते थे कि वह मिले तो उन गूढ़ रहस्यों के विषय में उससे बातें करें जो उसने कल कहे थे। उन्होंने रिसेप्शन पर उसके विषय में पता किया तो मालूम हुआ कि दीपाली आज मार्निंग में ही चेक-आउट कर गई है...

तो फिर उसके ऑडिट का क्या हुआ? कल ही तो वह आई थी? शिवेंद्र ने सोचा...कुछ अजीब बात है यह तो? इतने कम समय के लिए आने का आख़िर क्या रहस्य हो सकता है?

लेकिन फिर उन्होंने उस प्रसंग से अपना ध्यान हटा लिया। क्या फायदा? क्यों सोचा जाए यह सब? चली गई तो चली गई। इस होटल में ऐसे कितने ही लोग आते होंगे, ठहरते होंगे और चले जाते होंगे। फिर एक दीपाली पर ही क्यों सोचा जाए?

बारिश फिर शुरू हो गई और शिवेंद्र ने सोचा कि दो दिनों की रिपोर्टिंग कहीं एक दिन में ही न समेटनी पड़े। इस बारिश के मौसम में कहाँ जाया जाए? और इतनी तेज़ बारिश और अँधेरा कि हाथ को हाथ न सूझे। पहले आकाश से सीधी बौछार और उसके बाद तीसरी बौछार। एकदम झमाझम बारिश, मानों मचलती हुई बूँदों का सजा-सजाया स्वंयवर हो...धरती से आकाश तक। ऐसी बारिशें उन्हें अक्सर अलमाटी में दिख जाती थीं...कज़ाकिस्तान में जब सरकारी पोस्टिंग पर वहाँ तीन साल तक रहे थे। बारिश लगातार जारी थी और उसके खुलने की कोई संभावना नहीं थी। उन्होंने देखा कि उनके साथ बैठे लोग पी रहे हैं और बारिश को महसूस कर रहे हैं। उन्होंने एक बियर ली और महसूस किया कि ऐसे में बियर लेना ज़्यादा अच्छा रहेगा। उन्हें अलमाटी, कज़ाकिस्तान की याद आ गई, जहाँ बर्फबारी के मौसम में वे घर में शीशे की बनी दीवार के बाहरी हिस्से पर लुढ़कती बारिश की बूँदों को अनवरत देखते रहते और पीते रहते... उन्हें अच्छा लगता और उन जैसे कई कज़ाक को अच्छा लगता। लेकिन यहाँ तो वहाँ का नज़ारा नहीं मिल सकता।

देहरादून के बारिश भरे मौसम में शिवेंद्र ने अपनी रिपोर्टिंग पूरी की। अब वे दिल्ली के लिए निकलने की तैयारी कर रहे थे। वैसे भी इस बार उन्हें देहरादून कोई खास पसंद नहीं आया। उन्हें लगा कि रागिनी के न होने की उदासी उन्हें कहीं भी पीछा नहीं छोड़ती है लेकिन ज़िंदगी को जीना है और सभी काम करने हैं। उन्होंने बहुत कोशिश की, कि उन यादों से दूर होने का प्रयास करें, ख़ूब घूमें-फिरें, ख़ूब पढ़े-लिखें लेकिन अंत में यह निष्कर्ष निकालना पड़ेगा कि यह शायद संभव नहीं है और हो सकता है कि समय बीतने के साथ-साथ ही यादें कुछ कम हो जाएँ। बिलकुल तो विस्मृत कुछ भी नहीं होता लेकिन शायद हल्का बनता चले। यादें जब हल्की पड़ जाती हैं तो भी सिलसिला कहाँ ख़त्म होता है। एक याद धुँधली हो जाती है तो दूसरी-तीसरी या और भी कई यादें दस्तक देने लगती हैं और फिर पिछली कितनी ही यादों का सिलसिला शुरू हो जाता है। इससे बचना मुश्किल है। तो फिर उन यादों के काफिले को लिये-लिये चलें। जो चीज़ खत्म नहीं हो सकती उसे इस तरह ख़त्म होने को क्यों सोच लें? क्या यह उन ख़ूबसूरत यादों की हत्या न होगी? उन्होंने होटल छोड़ने का निर्णय कर लिया कि कल सुबह ब्रेकफास्ट के बाद चेक-आउट कर जाएँगे।

दिल्ली वापसी पर शिवेंद्र फिर अतीत में चले गए। रागिनी के बाद अतीत उनका पीछा नहीं छोड़ता। वे उससे जितना ही निकलने की कोशिश करते हैं, यादें उतना ही जकड़ लेती हैं। वे कहीं भी जाते हैं तो यह उदासी उनके साथ साए-सी चिपकी होती है। इससे उबरना आसान नहीं यह वह अच्छी तरह जान गए हैं। यों ही बैठ-बैठे जाने कितनी देर तक जाने क्या-क्या सोचते रहे। कहीं बाहर से आने के बाद अब तो अपना ही घर पराए-सा लगता है। उन्हें पता नहीं ऐसा लगता है मानों यह घर उनका है ही नहीं। किसी पराए-से घर में पराया जीवन बिता रहे हैं। अपने घर में भी क्या पराएपन का अहसास हो सकता है?

वे अपना लैपटॉप निकालते हैं। फ़ेसबुक पर गए तीन महीने बीत रहे हैं। औरों की तरह उन्होंने यहाँ पर कोई पोस्ट रागिनी के लिए नहीं डाली। उनका मानना है कि किसी की मृत्यु या मौत हमारा वैयक्तिक मामला है और इसका प्रदर्शन ठीक नहीं इसलिए रागिनी की मृत्यु एक तरह से गोपनीय बनी रही। कहीं-कहीं किसी-किसी से फ़ोन पर सहानुभूति के शब्द आते रहे लेकिन उन्होंने किसी को अपनी तरफ से कुछ नहीं बताया था। कहाँ साहस था उन दिनों कि किसी को कुछ बताया जाए? किसी को फ़ोन पर भी नहीं कुछ बताया, न किसी का फ़ोन अटेंड करने का साहस ही बचा था उनके पास। फ़ेसबुक पर वे पिछले तीन महीने में आई दूसरों की पोस्ट देखते रहे। अपनी पोस्ट पर गए तो बस दो लाइन लिखी...

"जीवन फिर मेरे क़रीब
पिछली यादों को सलाम।"

उनकी ये पंक्तियाँ कहीं से भी रागिनी की मृत्यु के बाद उसकी याद को संकेतित नहीं करती थीं, लेकिन जिन लोगों को वास्तविकता मालूम थी उनमें से किसी एक ने लिखा..."मुझे उम्मीद है कि अब आप सँभल गए होंगे। शुभकामनाएँ।" माधुरी ने लिखा मेसेंजर पर..."उम्मीद करती हूँ कि सब ठीक होगा। पिछले महीनों से कोई पोस्ट नहीं देखी आपकी तो चिंता हुई।"

दस वर्ष पीछे लौट गए शिवेंद्र। वक़्त ने

इंतज़ार को पटाक्षेप किया और लगा कि माधुरी प्रत्यक्ष खड़ी होकर बात कर रही है। तो क्या वह जानती होगी उनके विषय में...? या मन में यह बात आई होगी? वे कुछ चिंतित हुए, कुछ आश्वस्त भी और इन सबसे ऊपर वे सोचते रहे, माधुरी ने इस तरह अपनों की तरह पूछकर उनके मन के किस तार को झंकृत किया है? एक क्षण के लिए तो उन्हें लगा मानों उनका पूरा शरीर ही झंकृत हो उठा है। उन्होंने उसके लिखे वाक्य को कई बार पढ़ा और उतनी ही बार सोचा। सोचते-सोचते यह भी सोच लिया कि फ़ेसबुक पर पाँच हजार की भीड़ में एक माधुरी ने ही उनसे कुछ क्यों पूछा? लगा, पिछले दस साल का वक़्त अचानक उनके सामने खड़ा हो गया है। वह वक़्त बसंत का है। और माधुरी बासंती निशा में रजनीगंधा फूल की डाल के पास खड़ी है। किसी अज्ञात और अनजान डोर सा वह अपने मकान के बाहर लगे उस रजनीगंधा फूल के पास खड़े हो गए। उसकी मदमाती सुगंध को लम्बी-लम्बी साँस में भरते रहे... उन्हें लगा, शरीर में साँस की गति कुछ तीव्र हो रही है, मानो ऑक्सीजन पहली बार शरीर के अंदर प्रवेश कर रही हो।

वे बाहर से भीतर आए। फ़ेसबुक पर ध्यान दिया। मेसेंजर पर गए। लगा, माधुरी उनके उत्तर का इंतज़ार कर रही है। इस बार फिर लिखा...माधुरी ने, किसी ने आपको लिखा है कि आशा है, आप अब सँभल गए होंगे। सब ठीक तो है? उन्हें लगा कि माधुरी मेसेंजर पर उनके जवाब की प्रतीक्षा कर रही है। कुछ क्षण रुके। कुछ सोचते रहे... डबडबा गए... रो पड़े। पता नहीं कब तक सिसकियाँ भरते रहे और रागिनी को याद करते रहे।

लिखा उन्होंने "नहीं, माधुरी। सब ठीक नहीं है। कुछ भी ठीक नहीं है..."

"मेरा मन कह रहा था कि कुछ ग़लत न हुआ हो। वह वक़्त बहुत ख़राब था... कोरोना की वजह से अकस्मात् कई लोग एक-एक कर जा रहे थे और इस बीच आपकी कोई पोस्ट नहीं आ रही थी तो मन व्याकुल हुआ। लगा, कुछ ग़लत तो नहीं हुआ होगा? फिर ऐसा लगा कि आपको फ़ोन करूँ लेकिन हिम्मत नहीं हुई। आख़िर क्या बात करती? कहाँ से शुरू करके कहाँ ख़त्म करती और फ़ोन करने के बाद कहीं कोई ऐसी-वैसी बात हो जाती तो? इसलिए चुप रही और सोचती रही कि कहीं कोई संकेत मिलेगा तो पूछूँगी।"

"आप बताइए, सब ठीक तो है?"

फिर से सुबकने लगे शिवेंद्र। फिर रो पड़े और आँसुओं में कोई काल्पनिक चित्र झिलमिलाने लगा उनकी आँखों के सामने... उन्हें लगा, माधुरी ऐसी ही होगी जैसे अभी यह झिलमिलाता चित्र नाच गया था उनकी आँखों के सामने।

"नहीं माधुरी, कुछ भी ठीक नहीं है। हम व्हाट्सएप पर बात कर सकते हैं, मेरा मतलब संवाद कर सकते हैं।"

"मुझे लगता था, कुछ ग़लत हुआ है शायद। कुछ बहुत ही दुःखद।"

"कैसे?"

"यों ही आपके बारे में सोचते हुए। लगा कि फ़ेसबुक पर आप पिछले कुछ महीनों से नहीं दिख रहे तो लगा कि कुछ ग़लत न हुआ हो।"

"लेकिन ऐसा कुछ और तो किसी ने नहीं पूछा मुझसे? फ़ेसबुक पर तो मेरे और भी दोस्त हैं।"

"मैं नहीं जानती। एक लेखक और कवि के रूप में मैं आपको बहुत पसंद करती हूँ। आपका लिखा मैं हमेशा पढ़ती रहती हूँ लेकिन इधर कुछ छह महीनों से लगातार नहीं देखा तो सोचती रही कि... प्रार्थनाएँ करती रही लेकिन मन में आशंका तो थी ही। फिर भी मन ही मन शुभकामनाएँ देती रही कि हे ईश्वर कुछ बुरा न हुआ हो।"

"आप बताइए?"

कुछ लिखा नहीं उन्होंने। लिखा न गया। तो क्या इतनी आत्मीयता भी किसी के दिल में उमड़कर आती है जब कोई अपरिचित इस तरह इतने करीब से संवाद लिखे ? यह लहजा तो औपचारिक बिलकुल नहीं लगता। एक अनौपचारिक मुलाकात की तरह लगता है यह! तो क्या दस साल पहले वह संक्षिप्त-सा संवाद आज फिर से दोनों के बीच एकाकार हो रहा है? फिर से लिखे वाक्य उभरने लगे...

"आपने कुछ बताया नहीं? मैं अब तक सोचती रही हूँ। आप बताइए प्लीज़।"

"वह नहीं रही माधुरी। तुम पहली हो जिसे यह बात बता रहा हूँ वरना अभी तक किसी को नहीं बताया। और क्या फायदा, पता तो चल ही जाता है लोगों को। तो फिर हम क्यों बताते चलें भला? और बताया तो उन्हें जाता है जो आत्मीय और अपने हों।"

"यह बहुत दुखद है। कोरोना में कई लोग चले गए। मेरे कई रिश्तेदार, मेरे पड़ोस के लोग, शक्ति के दोस्त, मेरी कुछ जान-पहचान की लड़कियाँ। क्या कर सकते हैं। जानकर बहुत दुःख हुआ लेकिन आप सँभलिए और पहले की तरह लिखते रहिए।" इतना कहकर शायद वह चली गई...संवाद पटल से अदृश्य हो गई।

शिवेंद्र कुछ आश्वस्त हुए। उन्हें लगा कि ज़्यादातर लोग तो कुछ सुनना ही नहीं चाहते। उन्हें इतना कमज़ोर भी नहीं होना चाहिए कि वे हर जगह यों टूटते, बिखरते, बिलखते रहें। अधिक को तो यह सब अच्छा ही नहीं लगा होगा। और हुआ भी तो यही है पिछले महीनों के दौरान! जिससे भी उन्होंने थोड़ा-सा भी कहा तो वह अपना दुःख पुराण लेकर बैठ गया। उन्हें लगा था कि शायद लोग उन्हें कमज़ोर समझने लगे हैं। स्वयं उनके छोटे भाई ने कहा था..."आपके लिए तो बड़ा बुरा हुआ। उसने 'आपके लिए' की जगह 'हमारे लिए शब्द' का प्रयोग नहीं किया था। आवाज़ में व्यंग्य का लहजा था। मानों ऐसा सिर्फ मेरे लिए ही हुआ है। दुनिया में आज के बाद फिर कोई मौत नहीं होगी। शिवेंद्र छोटे भाई के उस लहजे से कुछ आहत हुए और अपने ही भीतर लौट आए। उन्हें कुछ समय लग रहा था... लगता रहा कुछ देर तक कि वे बेजान होकर बेड पर गिर पड़े हैं। शिवेंद्र उन दिनों कोरोना से पीड़ित थे और उनका इलाज घर पर ही चल रहा था जब रागिनी गुज़र गई थी उसके तुरंत बाद से ही। भाई की वह बात सुनकर वे बुरी तरह हिल से गए थे। लेकिन जिसे हम 'नियति' कहते हैं उसकी गति को कोई नहीं जानता है। ठीक दस रोज़ के बाद छोटे भाई की पत्नी चल

बसी। इस घटना की किसी ने भी उम्मीद न की होगी। ख़ुद शिवेंद्र सन्न-से रह गए थे और उन्हें लगा था कि रागिनी ने दूसरी बार प्रस्थान किया है।

अपने किसी अत्यंत प्रिय के गुज़रने के बाद लोग उस आदमी को इतना कमज़ोर क्यों बनाते रहते हैं जो उस घटना विशेष के गुज़र जाने के क्रम में कुछ-कुछ ख़ुद ही रोज कमज़ोर हुआ जा रहा है? मज़बूत तो उसे कोई भी नहीं बनाता। और ऐसा तो कोई बहुत क़रीबी आदमी ही बना सकता है, लेकिन ऐसे लोग तो बहुत ही कम बच रहे हैं।

लेकिन माधुरी ने जो बातें लिखी है? क्यों लिखा है भला। उसे शायद शिवेंद्र के साथ सहानुभूति हो गई हो। यह हो सकता है। लेकिन क्या ऐसा सचमुच हो सकता है। वे यह सोच ही रहे थे कि एक मैसेज आया... "आप मैसेज का जबाव देते रहें। ख़ुद को हल्का महसूस कीजिए। जो हो गया वह हो गया। चीज़ें वापस लौटकर नहीं आ सकतीं। जितना कुछ आप मेरे साथ शेयर करना चाहें वह कर सकते हैं। लेकिन हर हाल में अपना ध्यान रखें।"

इस संवाद का वह क्या जवाब दें? क्या इसमें सवाल और जवाब दोनों नहीं है? हाँ, इतना तो ज़रूर है कि शिवेंद्र को माधुरी के कारण एक सांत्वना तो ज़रूर मिली है! यह अद्भुत है और ऐसा उन्होंने पहले कभी नहीं सोचा था। यह संवाद अदायगी कितनी आत्मीयतापूर्ण है। लगता है कि माधुरी कहीं से कुछ देखती रहती है और उसके बाद वह संवाद लिखती है। उसके पास शिवेंद्र का कांटेक्ट नंबर है और शिवेंद्र के पास भी उसका मोबाइल नंबर है लेकिन शायद उसे संवाद लिखना ज़्यादा अच्छा लगता है। उन्हें लगा कि माधुरी के संवाद का जवाब उन्हें देना चाहिए। किसी आशा और विश्वास के तहत ही तो वह कुछ लिखती है।

"आप अपने सभी कष्ट बताइए। मेरे साथ शेयर करें मैं सुनूँगी।" यह बड़ी बात है। ऐसा तो रागिनी के जाने के बाद और किसी ने नहीं कहा था? पूरे मानव समुदाय के बीच...वह समुदाय जो शिवेंद्र के करीब होता है उससे भी ज़्यादा माधुरी ने हमदर्दी दिखायी है। उन्होंने लिखा..."मैं अब अपना ध्यान रखने लगा हूँ। खाने-पीने की कोई चिंता नहीं है। मेड आती है, वह खाना बना जाती है। मैं समय पर खाना खा लेता है। रात का डिनर भी ले लेता हूँ। उसके बाद हल्दी-दूध लेना मेरी रूटिन का हिस्सा है, वह भी लेता हूँ।"

"यह बहुत अच्छी बात है। मन को हल्का-फुल्का रखिए। किसी भी तरह से उधर से मन हटाइए और बेहतर होगा कि ख़ुद को लिखने-पढ़ने में लगाये रखिए। इससे मन एकाग्र रहेगा।"

"ठीक है, मैं सब ध्यान में रखूँगा।"

वह चली गई। इतना सा संवाद उसे शिवेंद्र तक पहुँचाना था और उसके बाद चली गई। उसका संवाद पटल पर आना और कुछ पल रहने के बाद फिर चले जाना एक ऐसे रहस्य लोक की सृष्टि करता है जहाँ सब कुछ बहुत अच्छा लग सकता है। उस रहस्य लोक में ही रागिनी बस गई होगी। तो क्या माधुरी भी उसी रहस्य लोक में रहती है उनके लिए? शिवेंद्र कुछ विचलित हुए। क्या, ऐसा हो सकता है? उन्होंने तो कभी माधुरी को देखा तक नहीं। बस दस साल पहले वाली एक छोटी-सी स्मृति है। उसके सिवा कुछ भी नहीं।

रात वह यही सब सोचते रहे। तो क्या रागिनी के बाद माधुरी का अध्याय शुरू होने जा रहा है? क्या किसी की ममता या संवेदना ऐसी भी हो सकती है? इतनी घनीभूत कि आदमी को भीतर तक हिला कर रख सके। क्या यह सच नहीं कि हमारे जीवन में अनजाने और अज्ञात लोगों का उतना ही बड़ा स्थान होता है जितना ज्ञात और अपने लोगों का होता है। बल्कि अपनों से भी ज़्यादा उन्हीं अनजान लोगों का होता है। यह सच है। यह हम हैं कि अपने घर-परिवार की चार दीवारी के बीच उस अनजान या अपरिचित के लिए शुभकामना का एक भी शब्द बोल नहीं पाते जो कभी ऐन मौके पर कोई बड़ी सहायता कर गया था।

रात के दस बजने को हैं। दस बजते ही शिवेंद्र सभी इलैक्ट्रोनिक्स ऑफ कर देते हैं। मोबाइल भी बंद। यह उनका रूटीन है। दस बजे रात को वे हल्दी दूध ज़रूर लेते हैं।

दूसरी सुबह माधुरी का फिर एक मैसेज आया..."गुड मॉर्निंग! कैसे हैं आप?"

"रात नींद आई?"

"कुछ देर के लिए तो आई फिर चली गई। पूरी रात सोए तो कुछ महीने बीत रहे हैं मानों।"

"पूरी रात सोना ज़रूरी तो नहीं? जितनी देर नींद आए ठीक है। फिर सो लीजिए।"

शिवेंद्र ने महसूस किया, किसी ने उनके पूरे शरीर को झंकृत कर दिया है। यह कैसा सिलसिला चल पड़ा जो निहायत ही अपरिचित और अजनबी है? तो क्या शब्दों में ऐसा जादू होता है कि वह आदमी को 'बेबस' बना देते हैं, वह तटस्थ भी रहे तो शब्दों की ही वजह से। यही सच है। इस सच के लिए ही बड़े-बड़े समाज शास्त्री शोध करते रहे हैं। रात में उन्हें कब नींद आ गई और कब तक सोए रहे वो समझ न पाए।

दोनों के बीच संवाद चलते रहे। यह संवाद देर तक और महीनों तक जारी रहे। मुझे उन आत्मीय संवादों का पता चल गया था जब शिवेंद्र मुझे एक शाम कनाट प्लेस के मोहन सिंह पैलेस में मिले थे। उनका मोबाइल लैपटॉप किसी ने चुरा लिया था और इस प्रकार दोनों के बीच चले वे जीवंत संवाद अचानक चुप्पी की शक्ल में सन्नाटे में लिपट गए थे।

शिवेंद्र के पास माधुरी का कटेक्ट नंबर तो था लेकिन वे संवाद खो गए थे। यह यांत्रिक चीजें कभी-कभी कितनी निर्मम और निष्ठुर होती हैं।

यादें भी बड़ी विचित्र होती हैं। नहीं आतीं तो लगता है कुछ घटित ही नहीं हुआ था और आती हैं तो जैसे सब कुछ निचोड़कर सामने रख देती हैं। याद तो है जब आख़िरी बार क्या कहा था माधुरी ने? शिवेंद्र के स्मृति-पटल पर यादों का अंतहीन सिलसिला शुरू हो जाता है। वे तमाम संवाद जो बेहद अपने से और आत्मीय से लगे थे... जो दोनों को नज़दीक लाए थे, जिनके मात्र चलते रहने से दोनों की आपसी समझ विकसित हुई और अनजाने ही दोनों एक-दूसरे का बन गए थे... शायद ग्रह-नक्षत्र या सितारों को यही मंज़ूर था। लेकिन तभी तो कोई संवाद हो नहीं रहा था न तो माधुरी

ने कुछ लिखा, नहीं मोबाइल और लैपटॉप की चोरी होने के बाद शिवेंद्र ने ही कुछ लिखा।

और ऐसे में एक रोज़ शिवेंद्र ने कुछ लिखा, फिर लिखा, मिटाया और उसके बाद आख़िरी बार लिखा। लिखकर अपने ही पास रखा, भेजा नहीं। क्या पता इसकी क्या प्रतिक्रिया हो लेकिन आख़िर में उस लिखे को चिट्ठी की शक्ल में माधुरी को भिजवा दिया।

माधुरी और शिवेंद्र के बीच एक अनलिखित वक़्त कुहासे में लिपटा हुआ खड़ा था जिसे बस वे दोनों ही देख सकते थे। शायद दोनों के बीच लिपटा वह वक़्त वक़्त नहीं, दरअसल वही दोनों थे...एक दूसरे को देखते हुए... ठीक उसी तरह जैसे कि एक रोज़ शिवेंद्र ने माधुरी को मैसेज करते लिखा था कि जिस रोज़ वे उसे अपने सामने देखेंगे उस रोज़ कुछ घंटे तक वह बस चुपचाप उसे देखते रहेंगे, बोलेंगे कुछ भी नहीं। वह कुहासे में लिपटा वक़्त दोनों की शिराओं में बह रहा है... बाहर अचानक बहती आई इस बासंती बयार में बहता वक़्त... अचानक किसी उत्तर की प्रतीक्षा में शिवेंद्र माधुरी की ओर देखते हैं मानों उनकी आँखों में वह सारे संवाद चल रहे हैं जिनके साथ दोनों ही रू-ब-रू हुए थे। माधुरी ने उनकी आँखों में ख़ुद को डूबते देखा। आहत हुई, आँखें डबडबाईं, होंठ दबाते बस इतना ही कह पाई..."इस तरह मेरे जीवन में तुम 'औराते-बौराते' आए हो कि मैं ख़ुद में ही ख़ुद को डूबा हुआ महसूस करने लगी हूँ। कुछ सवाल ऐसे होते हैं जिनका जवाब हमारे पास नहीं होता। जवाब शायद वक़्त के पास भी नहीं होता तो फिर क्यों न सवालों के साथ ही हम चलते रहें! साथ चलते शायद जवाब मिल जाएँ और न भी मिलें तो क्या हम इसी तरह एक-दूसरे को समझते हुए साथ नहीं चल सकते? हम वहीं से क्यों न चलें जहाँ से दस साल पहले चले थे..." शिवेंद्र ने आँखें मूँद ली। वक़्त अब भी वहीं खड़ा था और माधुरी का अक्स वैसा ही था जैसा कि उन्होंने दस साल पहले देखा था। क्या इतने साल बीत जाने पर भी हम वही सब देखते रहते हैं जो देख चुके हैं? यह लौटना भला कैसा होता होगा?

000

लघुकथा

पिल्ला पीहर का...

व्यग्र पाण्डे

यूँ तो जीव-प्रेम के लिए पूरा शहर जे पी को बख़ूबी जानता था। उन्हें गली-मोहल्ले, यहाँ-वहाँ, कहीं भी कोई ख़ूबसूरत या दु:खी जानवर या पक्षी मिल जाता तो वे उसे घर ले आते और पालते और उसकी देखरेख भी स्वयं जे पी को ही करनी पड़ती, कारण कि उनकी इस आदत से पत्नी बिल्कुल भी सरोकार नहीं रखती थी। इस कारण न चाहते हुए भी लाए गए जानवर जे पी को कुछ दिन बाद वापस छोड़ कर आने पड़ते। पर कुछ अंतराल के बाद फिर कोई दूसरा मेहमान घर में आ जाता और फिर घरवाली की नाराज़गी के कारण उन्हें किसी जान-पहचान वाले को देकर आना पड़ता। ये क्रम वर्षों से चला आ रहा था।

पिछले पखवाड़े जे पी को अपने ससुराल जाना पड़ा। वहाँ उन्हें एक सुन्दर सा कुत्ते का पिल्ला पसंद आ गया। ससुराल वाले भी जे पी की इस आदत से बख़ूबी परिचित थे। वापस आते समय सासु माँ ने ग्यारह सौ रुपये के साथ नारियल की जगह वह पिल्ला भेंट के रूप में प्रदान किया। अपने जीव-प्रेम के संस्कारों के कारण जे पी मना नहीं कर सके और झिझकते-झिझकते पिल्ले को ले आए।

घर में प्रवेश करते ही श्रीमती के प्रश्नों की बौछारों का सामना करना पड़ा। पर यह पता चलने पर कि यह पिल्ला अपने घर वालों की कुतिया का है और माँ ने स्पेशल रूप से विदा में दिया है, तो अचानक वे बौछारें रुक गईं। और दौड़ कर श्रीमती ने उस पिल्ले को गोद में उठा लिया, और चूमने लगी। तुरंत ही चेहरे पर मुस्कराहट बिखेरते हुए कहा कि यह काम आपने अच्छा किया जो इस पिल्ले को यहाँ ले आए। पर जे पी को इस बात का डर सता रहा था कि कुछ दिनों बाद इसे भी वापस ससुराल पहुँचाना पड़ेगा। पर आज उस पिल्ले को लाए हुए दो महीने हो गए, घर में कोई तू-तू मैं-मैं उसे लेकर बिल्कुल नहीं। पिल्ले से संबंधित सभी कार्य यहाँ तक उसकी पोटी की सफाई भी बड़ी ज़िम्मेदारी के साथ ख़ुशी-ख़ुशी स्वयं श्रीमती कर लेती हैं। पिल्ला जो ठहरा पीहर का...

000

व्यग्र पाण्डे, कर्मचारी कालोनी, गंगापुर सिटी, स.मा. (राजस्थान) 322201
मोबाइल- 9549165579
ईमेल- vishwambharvyagra@gmail.com

अगस्त के प्रेत

लातिन अमेरिकी कहानी

मूल लेखक : गैब्रिएल गार्सिया मार्खेज़

अनुवाद : सुशांत सुप्रिय

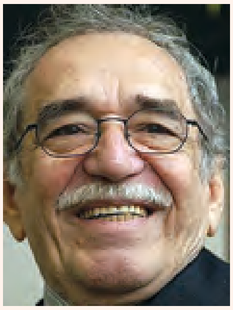

गैब्रिएल गार्सिया मार्खेज़

गैब्रिएल गार्सिया मार्खेज़ बीसवीं शताब्दी के लातिन अमेरिकन उपन्यासकार, कहानीकार और पत्रकार थे। सन् 1982 में उन्हें साहित्य में नोबेल प्राइज़ मिला।

सुशांत सुप्रिय

A-5001, गौड़ ग्रीन सिटी,

वैभव खंड, इंदिरापुरम्, ग़ाज़ियाबाद - 201014(उ.प्र.)

मोबाइल- 8512070086

ईमेल- sushant1968@gmail.com

दोपहर से थोड़ा पहले हम अरेज़्ज़ो पहुँच गए, और हमने दो घंटे से अधिक का समय वेनेज़ुएला के लेखक मिगुएल ओतेरो सिल्वा द्वारा टस्कनी के देहात के रमणीय इलाक़े में ख़रीदे गए नवजागरण काल के महल को ढूँढ़ने में बिताया। वह अगस्त के शुरू के दिनों का एक जला देने वाला, हलचल भरा रविवार था और पर्यटकों से ठसाठस भरी गलियों में किसी ऐसे व्यक्ति को ढूँढ़ना आसान नहीं था जिसे कुछ पता हो। कई असफल कोशिशों के बाद हम वापस अपनी कार के पास आ गए, और हम सरू के पेड़ों की क़तार वाली, किंतु बिना किसी मार्ग-दर्शक संकेत वाली सड़क के रास्ते शहर से बाहर निकल आए। रास्ते में ही हमें हंसों की देख-भाल कर रही एक वृद्ध महिला मिली, जिसने हमें ठीक वह जगह बताई जहाँ वह महल स्थित था। हमसे विदा लेने से पहले उसने हमसे पूछा कि क्या हम रात उसी महल में बिताना चाहते हैं। हमने उत्तर दिया कि हम वहाँ केवल दोपहर का भोजन करने के लिए जा रहे हैं, जो हमारा शुरूआती इरादा भी था।

"तब तो ठीक है," उसने कहा, "क्योंकि वह महल भुतहा है।"

मैं और मेरी पत्नी उस वृद्धा के भोलेपन पर हँस दिए क्योंकि हमें भरी दुपहरी में की जा रही भूत-प्रेतों की बातों पर बिल्कुल यक़ीन नहीं था। लेकिन नौ और सात वर्ष के हमारे दोनों बेटे इस विचार से बेहद प्रसन्न हो गए कि उन्हें किसी वास्तविक भूत-प्रेत से मिलने का मौक़ा मिलेगा।

मिगुएल ओतेरो सिल्वा एक शानदार मेज़बान होने के साथ-साथ एक परिष्कृत चटोरे और एक अच्छे लेखक भी थे, और दोपहर का अविस्मरणीय भोजन वहाँ हमारी प्रतीक्षा कर रहा था। देर से वहाँ पहुँचने के कारण हमें खाने की मेज़ पर बैठने से पहले महल के भीतरी हिस्सों को देखने का अवसर नहीं मिला, लेकिन उसकी बाहरी बनावट में कुछ भी डरावना नहीं था। यदि कोई आशंका रही भी होगी तो वह फूलों से सजी, खुली छत पर पूरे शहर का शानदार दृश्य देखते हुए दोपहर का भोजन करते समय जाती रही। इस बात पर यक़ीन करना मुश्किल था कि इतने सारे चिर-स्थायी प्रतिभावान् व्यक्तियों का जन्म मकानों की भीड़ वाले उस पहाड़ी इलाक़े में हुआ था, जहाँ नब्बे हज़ार लोगों के समाने की जगह बड़ी मुश्किल से उपलब्ध थी। हालाँकि अपने कैरेबियाई हास्य के साथ मिगुएल ने कहा कि इनमें से कोई भी अरेज़्ज़ो का सबसे प्रसिद्ध

व्यक्ति नहीं था।

"उन सभी में से महानतम तो ल्यूडोविको था," मिगुएल ओतेरो सिल्वा ने घोषणा की।

ठीक वही उसका नाम था। उसके आगे-पीछे कोई पारिवारिक नाम नहीं जुड़ा था- ल्यूडोविको, सभी कलाओं और युद्ध का महान् संरक्षक। उसी ने वेदना और विपदा का यह महल बनवाया था। मिगुएल दोपहर के भोजन के दौरान उसी के बारे में बातें करते रहे।

उन्होंने हमें ल्यूडोविको की असीम शक्ति, उसके कष्टदायी प्रेम और उसकी भयानक मृत्यु के बारे में बताया। उन्होंने हमें बताया कि कैसे ग़ुस्से से भरे पागलपन के उन्माद के दौरान ल्यूडोविको ने उसी बिस्तर पर अपनी प्रेमिका की छुरा भोंक कर हत्या कर दी, जहाँ उसने अभी-अभी उस प्रेमिका से सहवास किया था। फिर उसने ख़ुद पर अपने ख़ूँखार कुत्ते छोड़ दिए, जिन्होंने उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिए। मिगुएल ने पूरी गंभीरता से हमें आश्वस्त किया कि अर्द्ध-रात्रि के बाद ल्यूडोविको का प्रेत प्रेम के इस दुखदायी, अँधेरे महल में शांति की तलाश में भटकता रहता है।

महल वाक़ई विशाल और निरानंद था। लेकिन दिन के उजाले में भरे हुए पेट और संतुष्ट हृदय के साथ हमें मिगुएल की कहानी केवल उन कई विपथनों में से एक लगी जिन्हें सुना कर वे अपने अतिथियों का मनोरंजन करते थे। दोपहर का आराम करने के बाद हम बिना किसी पूर्व-ज्ञान के महल के उन बयासी कमरों में टहलते-घूमते रहे जिनमें उस महल की कई पीढ़ियों के मालिकों ने हर प्रकार के बदलाव किए थे। स्वयं मिगुएल ने पूरी पहली मंज़िल का पुनरुद्धार कर दिया था। उन्होंने वहाँ एक आधुनिक शयन-कक्ष बनवा दिया था जहाँ संगमरमर का फ़र्श था, जिसके साथ वाष्प-स्नान की सुविधा थी, व्यायाम करने के उपकरण थे और चटकीले फूलों से भरी वह खुली छत थी जहाँ हमने दोपहर का भोजन किया था। सदियों से सबसे ज़्यादा इस्तेमाल की जाने वाली दूसरी कथा में अलग-अलग काल-खंडों की सजावट वाले एक जैसे साधारण कमरे थे, जिन्हें उनके हाल पर छोड़ दिया गया था। लेकिन सबसे ऊपरी मंज़िल पर हमने एक कमरा देखा जो अक्षुण्ण रूप से संरक्षित था, जिसे समय भी भूल चुका था — ल्यूडोविको का शयन-कक्ष।

वह पल जादुई था। पलंग वहाँ पड़ा था जिसके पर्दों में सोने के धागे से ज़रदोज़ी का काम किया गया था। बिस्तरें, चादरें आदि क़त्ल की गई प्रेमिका के सूखे हुए ख़ून की वजह से अकड़ गई थीं। कोने में आग जलाने की जगह थी जहाँ बर्फ़ीली राख और पत्थर बन गई अंतिम लकड़ी पड़ी हुई थी। हथियार रखने की जगह पर उत्कृष्ट क़िस्म के हथियार पड़े हुए थे और एक सुनहले चौखटे में विचारमग्न सामंत का बना तैल-चित्र दीवार की शोभा बढ़ा रहा था। इस तैल-चित्र को फ़्लोरेंस के किसी श्रेष्ठ चित्रकार ने बनाया था किंतु बदक़िस्मती से उसका नाम उस युग के बाद किसी को याद नहीं रहा। लेकिन जिस चीज़ ने मुझे वहाँ सबसे ज़्यादा प्रभावित किया वह न जाने कहाँ से वहाँ आ रही ताज़ा स्ट्रॉबेरी की ख़ुशबू थी।

टस्कनी में गर्मियों के दिन लम्बे और धीमी गति से गुज़रने वाले होते हैं और क्षितिज पर रात नौ बजे तक उजाला रहता है। शाम पाँच बजे के बाद हमने समूचे महल का चक्कर लगा लिया था, लेकिन मिगुएल ने ज़ोर दे कर कहा कि हमें सैन फ्रांसिस्को गिरिजाघर में मौजूद पिएरो देल फ्रांसिस्का द्वारा बनाए गए भित्ति-चित्र देखने जाना चाहिए। फिर हम चौक के पास मौजूद वृक्षों के नीचे कॉफ़ी पीते हुए बैठे रहे। जब हम अपना सामान लेने के लिए वापस आए तो हमने पाया कि रात का भोजन हमारी प्रतीक्षा कर रहा था। इसलिए हम रात के खाने के लिए वहाँ रुक गए।

जब हम एकमात्र सितारे वाले बैंगनी आकाश तले रात्रि का भोजन कर रहे थे, लड़कों ने रसोई में से 'फ़्लैश-लाइट' निकाल ली और महल के ऊपरी मंज़िलों के अँधेरे की छान-बीन करने के लिए निकल गए। मेज़ पर से हमें सीढ़ियों पर जंगली घोड़ों के सरपट दौड़ने की आवाज़ें सुनाई दे रही थीं। मुझे ऐसा भी लगा जैसे महल के दरवाज़े शोकाकुल होकर कराह रहे हों और अँधेरे कमरों में से ल्यूडोविको को बुलाए जाने की आनंददायक आवाज़ें आ रही हों। दरअसल उन्हीं लड़कों के मन में उस विशिष्ट कमरे में सोने का शैतानी विचार आया था। मिगुएल ओतेरो सिल्वा बेहद ख़ुश हुए और उन्होंने लड़कों की बात का समर्थन किया, जबकि हममें उन्हें 'न' कहने का सामाजिक हौसला नहीं था।

मुझे जैसी आशंका थी, उसके विपरीत रात में हमें अच्छी नींद आई। मैं पहली मंज़िल के एक शयन-कक्ष में सोया था और बच्चे बग़ल वाले कमरे में सोये थे। दोनों कमरों का आधुनिकीकरण कर दिया गया था और उन कमरों के बारे में कुछ भी विषादपूर्ण नहीं था। जब मैं नींद आने की प्रतीक्षा कर रहा था, तब मैंने बाहरी कमरे की पेंडुलम-घड़ी को अनिद्रा के बारह घंटे की टन-टन बजाते हुए सुना, और तब मुझे हंसों की देखभाल कर रही उस बूढ़ी महिला द्वारा कही गई डरावनी बात याद आई। लेकिन हम सब इतने थके हुए थे कि जल्दी ही हम एक गहरी, अटूट नींद में चले गए।

सुबह मैं सात बजे के बाद ही जगा। खिड़की के सहारे ऊपर जा रही अंगूर की बेलों में से छन कर शानदार धूप कमरे में आ रही थी। मेरी बग़ल में सोई मेरी पत्नी जैसे मासूमियत के शांत समुद्र में उतरा रही थी। मैंने ख़ुद से कहा, इस युग में भूत-प्रेतों की बात सोचना भी बेवक़ूफ़ी है ! लेकिन तभी स्ट्रॉबेरी की ताज़ा गंध ने मुझे अस्थिर कर दिया। और तब मुझे कमरे के कोने में आग जलाने की वह जगह दिखी; जहाँ ठंडी राख और पत्थर में बदल गई अंतिम लकड़ी पड़ी थी। साथ ही मुझे उस उदास सामंत का सोने के चौखटे में टँगा तैल-चित्र दिखा जो तीन शताब्दियों की दूरी लाँघ कर हमें देख रहा था, क्योंकि दरअसल हम पहली मंज़िल के अपने उस शयन-कक्ष में नहीं थे जहाँ हम रात में सोए थे, बल्कि ल्यूडोविको के शयन-कक्ष में थे, जहाँ बिस्तर पर ऊपर एक छतरी थी, पर्दे धूल से भरे हुए थे और बिस्तर की चादरें अभी भी मृत शापिता के गरम लहू से भीगी हुई थीं।

000

पुनरपि जन्मम्, पुनरपि मरणम्, पुनरपि जननी जठरे शयनम्

डॉ. वंदना मुकेश

डॉ. वंदना मुकेश
35 ब्रुकहाउस रोड, वॉलसॉल, WS 5 3AE, इंग्लैंड
मोबाइल- +447886777418
ईमेल- vandanamsharma@hotmail.co.uk

बरमिंघम में बारहवाँ साल। और इस रास्ते पर सप्ताह में चार दिन जाते हुए लगभग आठ साल। रास्ता मानों रट सा गया है। घर से निकलने पर आधे मील के बाद बाँयी तरफ मुड़ने पर एक बस स्टॉप है। वहाँ से लगभग डेढ़ मील पर बाँई ओर एक कॉलेज और उसके सामने पादचारियों के लिये ट्रैफिक लाईट से नियंत्रित क्रासिंग की सुविधा। लगभग एक मील के अंतर पर एक राउंड अबाउट-1, फिर लगभग डेढ़-डेढ़ मील के अंतर पर चार राउंड अबाउटों के बाद हेगली रोड का जंक्शन, जहाँ अक्सर ट्रैफिक लाइट लाल होने से रुकना पड़ता है। कारों की लंबी उबाऊ कतारें। 5-6 मील के इस रास्ते पर दो जगह स्कूली बच्चे लॉलीपॉप-मेन-2 की सहायता से अपने माँ-बाप के साथ सड़क पार करते नज़र आते हैं। रास्ते का प्रथम चरण यहाँ समाप्त होता है

इसके बाद लगभग 3 मील तक 40 मील प्रति घंटा की रफ़्तारवाली दो लेनवाली सड़क। यहाँ भी एक जगह स्कूली बच्चे सड़क पार करते दिखाई देते हैं। चार ट्रैफिक लाइटें पार करने के बाद अचानक सामने देखने पर ऐसा लगता है कि पुल के ऊपरवाली आड़ी सड़क को किसी ने धीरे से उठाकर नीचे वाली सड़क पर ही रख दिया हो और गाड़ियाँ तीर की गति से नीचे वाली सड़क पर चलती सी दिखाई देती हैं। जिसे देखकर स्वत: ही गति 40 से भी कम हो जाती है। पर असल यह दृष्टिभ्रम नीचे वाली सड़क की ऊँचाई के कारण होता है। फिर आता है वह बड़ा सा 'राउंड अबाउट', जहाँ गाड़ियों का सैलाब ट्रैफिक लाइटों से नियंत्रित होता है। बावजूद इसके, गाड़ियों के इस महासमुद्र में कूदने से पहले चालक एक बार सोचने पर मजबूर हो जाता है। फिर उसी सैलाब का हिस्सा बनकर 'स्लिप रोड'-3 से 'एम-5 मोटर-वे'-4 पर आ जाती हूँ।

चार लेन वाली इस तेज़ रफ़्तार वाली सड़क पर, जिस पर वाहन कम से कम 60 मील और अधिकतम 70-80 मील प्रति घंटा की रफ़्तार से गाड़ी चलाते हैं, पूरा ध्यान अपने वाहन-कौशल कला पर केंद्रित करना होता है। क्योंकि कई उत्साही 100-110 मील की गति से उड़ते हैं। गाड़ी

में एम.एस. सुब्बलक्ष्मीजी की 'भज गोविंदम्' सुनते हुए अक्सर बार-बार ध्यान 'पुनरपि जन्मम्, पुनरपि मरणम्, पुनरपि जननी जठरे शयनम्' पर ही अटक जाता है।

लगभग 8-9 मील के इस द्रुत मार्ग पर लगभग 10 मिनिट के पश्चात् 'एम-6 मोटर-वे' पर पदार्पण और एक मील के पश्चात् 'स्लिप रोड' देखते ही जान में जान आती है। यहाँ से वॉलसॉल शहर के भीतर घुसकर मैं ख़ुद को बड़ा महफ़ूज़ सा महसूस करती हूँ। वही सीधे हाथ पर एक बड़ा सा चम-चम करता इलैक्ट्रॉनिक विज्ञापन 'स्पीड किल्ज़, ड्राइव सेफ़' दिखाई देता है तो होठों पर सहज ही मुस्कान छा जाती है, क्योंकि यहाँ से 30 मील प्रति घंटे का मार्ग है। लगभग डेढ़ मील, तीन ट्रैफिक लाईटें पार कर फिर बाँई ओर मुड़ती हूँ और पौन मील पर सीधे हाथ पर मेरी कर्म-स्थली, अर्थात् कॉलेज आ जाता है। 35--45 मिनिट की इसी यात्रा की शाम को विपरीत दिशा में पुनरावृत्ति होती है।

अब आप सोच रहे होंगे भला यह भी क्या बात हुई ? दुनिया के करोड़ों लोग इसी तरह किसी न किसी रास्ते पर हर रोज़ आते-जाते हैं। जी हाँ, बिल्कुल जाते होंगे और मैं आपकी बात से पूरा तरह सहमत हूँ। लेकिन जो बात मैं आपसे कहना चाह रही हूँ वह तो अब तक शुरू हुई ही नहीं है।

दरअसल, मैं इस यात्रा में अकेली होती हूँ। एक लंबे समय तक मैंने अर्जुन से भी अधिक एकाग्र होकर सिर्फ सड़क, राउंड अबाउट, मोड़, ट्रैफिक लाईट, लॉलीपॉप-मेन, गति-नियंत्रक साईन इत्यादि के अतिरिक्त कुछ देखा ही नहीं। मैं जिस रास्ते पर से रोज़ गुज़रती थी उसकी किसी चीज़ से मेरी कोई पहचान न थी। लेकिन जीवन में कभी कुछ ऐसा हो जाता है कि वह आपको जीना सिखा जाता है। जीवन की क़द्र करना सिखा जाता है। कुछ ऐसा ही मेरे साथ हुआ कि इसी रास्ते पर किसी कार ने मुझे पीछे से ज़ोरदार टक्कर मारी और मेरे कंधे और गर्दन पर ज़ोर का धक्का लगा। और अब तक कंधे और गर्दन के जिस दर्द के साथ मैंने जीना सीख लिया था। वह अत्यधिक उग्र हो गया। ड्राइविंग बंद। काम पर जाना बंद। दर्द ही दर्द। डॉक्टर और फिज़ियोथेरेपिस्ट के पैदल दौरों ने क्या कुछ नहीं सिखा दिया। जब लगभग चार हफ्तों के बाद भी दर्द अपने रंग दिखाता रहा तो मैं अवसादग्रस्त हो गई थी। मुझे लगने लगा कि अब इस जीवन में तो यह दर्द ठीक होने से रहा। मैं सिर झुकाए, चुपचाप, सोच में डूबी, डॉक्टर के यहाँ यंत्रवत् पैदल-पैदल जा रही थी। अपने दर्द के लेकर मन बहुत निराश था कि अचानक छोटे बच्चे के किलकने की आवाज़ से सिर उठाया। देखती हूँ कि, एक कमज़ोर-सी डेढ़-दो साल की एक नन्हीं सी अंग्रेज़ बच्ची अपनी माँ का हाथ पकड़े उड़ती हुई- सी जा रही थी। हवा बहुत ही तेज़ चल रही थी। हवा के तीखेपन के कारण ही मैंने भी अपना मुँह शॉल में गड़ाया हुआ था। अब मैं उस बच्ची को देखने लगी। वह नन्हीं गुड़िया पतझड़ से ज़मीन पर गिरे पीले पत्तों के पीछे भाग रही थी। उस बच्ची की माँ उसका हाथ पकड़े उड़ती पत्तियों को पकड़ने के खेल में शामिल थी। पत्तियाँ पकड़ने का उस नन्हीं का उल्लास देखते ही बनता था। दोनों की प्रफुल्लता देखकर मैं भी आनंदित हो उठी। पुनरपि जन्मम्, पुनरपि मरणम्, पुनरपि जननी जठरे शयनम्'...पता नहीं, कब उसके इस प्रयास को देखते -देखते मन कहाँ का कहाँ पँहुच गया। सोचने लगी, ये पेड़ से टूटे,डाल से छूटे बेकार पत्ते। जिन्हें न जाने कितने पैरों ने कुचला होगा और उनके बारे में सोचा तक न होगा। एक बच्चे के असीम आनंद का साधन बन जाते हैं। क्यों? सारी बात तो अपेक्षाओं की है, कचरा किसे भाता है। सुंदर फूल हों तो फूलदान की शोभा बन जाएँ लेकिन सूखे, बदरंग मुरझाए, फूलों ने किसको भरमाया है? सहसा अपनी ही एक कविता की चंद पंक्तियाँ याद आ गईं-

'अपने की चाहत में,पत्ते की आहट पर
पथराती आँखों से, सुबह से साँझ तक
खिड़की पर पोर्ट्रेट से जड़े
ज़िंदगी की शाम काटते ये बुड्ढे-बुड्ढियाँ'

मन फिर दार्शनिक होने लगा कि नन्हीं की किलक ने फिर से वापस बुला लिया। इस बार उसने एक बदरंग पीली-भूरी पत्ती पकड़ ली थी। उसकी पुलक, उसकी विजय-किलक मुझे भीतर तक पुलकित कर गई। वह अनजान बच्ची पल भर में बहुत कुछ सिखा गई। मैं भी गुनगुनाने लगती हूँ, सौ बार जन्म लेंगे, सौ बार फ़ना होंगे....

माँ प्रकृति ने तो कितना कुछ रच रखा है, हमारा मन बहलाने को। हम ही धृतराष्ट्र बन बैठे हैं। न भावनाओं की क़द्र है, न इंसानों या रिश्तों की फ़िक्र! भौतिक सुखों के पीछे भागते -भागते हम कितने संवेदनहीन हो गए है कि हमारी संवेदना अब ख़ुद हमें भी नहीं छूती। हो सकता है कि विलुप्त शब्दों की सूची में यह शब्द 'संवेदना' भी आ जाए!

हाँ तो, मैं बात कर रही थी मैं उस रास्ते की, जिस पर न जाने कितने वर्षों से मैं रोज़ सुबह-शाम जाती हूँ। अब इस रास्ते से मेरी पहचान बढ़ती जा रही है। रास्ते के प्रथम चरण में सड़क के दोनों ओर लम्बे-लम्बे विशाल वृक्ष हैं। सच कहूँ तो ये लम्बे-लम्बे विशाल वृक्ष मेरे बहुत अच्छे मित्र बन गए हैं। कभी ये तो कभी मैं, बस एक दूसरे से अपने दिल की बातें करते हैं, जी भरकर करते हैं। वस्तुत: इन वृक्षों के कारण ही जीवन को देखने की एक नई दृष्टि उत्पन्न हुई। सच, जीवन की आपाधापी में हम प्रकृति से कितने दूर हो चले हैं...

ऑटम, विंटर, स्प्रिंग और समर क्रमश: पतझड़, शीत, वसंत एवं गरमी। यही चार ऋतुएँ है इंग्लैंड में।

शीत ऋतु। दिसंबर का महीना। तापमान 2-3 डिग्री। सड़क के दोनों ओर कतारबद्ध वृक्ष एकदम निर्वसन खड़े हैं। उन्हें यों वस्त्रविहीन देखकर अपनी कार की हीटिंग शुरू करते मेरे बर्फीले हाथ सहम जाते हैं, क्षण भर को मेरी हड्डियाँ तक में ठंड का तीखापन भर जाता है। ये वृक्ष मुझे उन बुज़ुर्गों से लगते हैं जो अपना सब कुछ बच्चों को न्यौछावर कर देते हैं और निर्लिप्त भाव से जीवन की साँझ में सांसारिक व्यापारों के मौन साक्षी बन गए हैं। उनके निर्वसन शरीर को देख कर मन में आता है कि उनकी इस विशालता में भी अपनी छोटी सी शाल से कस के लपेट दूँ, मफ़लर पहना

दूँ। टोपा पहनाकर कानों को ढँक दूँ। किंतु देखती हूँ मेरे इस भाव से उनमें कोई हलचल नहीं होती। शांत। शायद वक्त के थपेड़ों से इतने मज़बूत हो गए हैं कि योगियों की भाँति मौसम की तीव्रता उन पर असर नहीं कर पाती। वे मन से भी इतने विशाल हैं कि अपनी इस दरिद्रता में भी सैकड़ों पक्षियों और जीवों को आसरा देने में समर्थ हैं।

इन्हीं निर्वसन वृक्षों को जब बर्फ से ढँका देखती हूँ तो एक नया ख़याल दस्तक देने लगता है। ऐसा लगता है प्रकृति ने मेरी इच्छा समझ ली और पहना दिया इन्हें शाल, मफलर, टोपा .....सफेद मफलर -कोट में सजा देख सहज ही मुस्कान छा जाती है होठों पर। बड़े तने हुए से नज़र आते हैं। अहंकार से नहीं, बल्कि कोट की गर्मी से। मन आश्वस्त हो जाता है।....

****

ट्रैफिक सिग्नल पर रुकी हरी बत्ती होने का इंतज़ार करती हूँ। आँखें चार होती हैं, पत्रविहीन वृक्षों के तले में उझकते डैफ़ोडिलों से। बसंत की पहली आहट इन विशालकाय वृक्षों के तले में खिलखिलाते मुस्कराते पीले-सफेद डैफ़ोडिल के यही फूल देते हैं। झप-झप पलकें झपकाते डैफ़ोडिलों को देखकर तन-मन बेवजह प्रफुल्लित हो उठता है। कौन कहता है कि बड़े की छाया में छोटे पनप नहीं पाते। ग़लत, बिल्कुल ग़लत! छोटे न केवल पनपते हैं बल्कि दम हो तो अपने अस्तित्त्व से जग-जहान को आह्लादित कर देते हैं। ऐसी चमक, ऐसी जिजीविषा! बस देखते ही बनती है। बड़ों के साये में पलते हैं, खिलते है, पूर्ण यौवन प्राप्त करते हैं, अपनी छोटी-सी ज़िंदगी का भरपूर आनंद लेते हैं और फिर जहाँ से जन्मे, उसी मिट्टी में विलीन हो जाते हैं। यह कह कर कि हम इन्हीं रास्तों पर, इन्हीं जगहों पर फिर मिलेंगे! उनकी खिलखिलाहट उनकी स्फूर्ति और उत्साह छा जाते हैं, कि जिएँ तो बस ऐसे जिएँ, भरपूर! छोटा ही सही किंतु अपनी संपूर्ण गरिमा के साथ जिया गया जीवन! कोई अरमान बाकी नहीं, कोई चाह अधूरी नहीं!

इधर डैफ़ोडिलों के सम्मोहन से अभी मुक्त भी नहीं हो पाती, मंत्रमुग्ध मैं... कि देखते ही देखते नवकोंपलों से सजने लगते हैं वे विशाल वृक्ष। देखते ही देखते ... पता ही नहीं चलता कि कब ये वृक्ष हरे-भरे जाते हैं। इनकी हरियाली देखकर ऐसा लगता है मानों परदेस गया एक-एक सदस्य घर में लौट रहा हो। जो वृक्ष कभी पत्रविहीन थे, गुलाबी- सफ़ेद ब्लॉसम्स से ऐसे लद जाते हैं मानो प्रियतम बसंत के आगमन से सारी प्रकृति लाज से गुलाबी हो उठी हो। दूर तक गुलाबी चुनरी ओढ़े यो वृक्ष अंग-अंग में एक अनोखी तरंग पैदा कर देते हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानों प्रकृति वधुएँ गुलाबी चूनर में सजी मुस्कुराते हुए आने-जानेवालों का स्वागत कर रही हैं। मैं भी मुस्करा कर कह ही देती हूँ, 'कितनी प्यारी लग रही हो, जी चाहता है तुम्हारी एक तस्वीर खींच लूँ।'

सच, हर बार सोचती हूँ कि फूलों से लदे इन वृक्षों की एक सुंदर सी तस्वीर अपने कैमरे में क़ैद कर लूँ। मगर अफ़सोस! जब इन्हें देखती हूँ तो या तो गाड़ी चला रही होती हूँ अथवा किसी ट्रैफ़िक सिग्नल पर धीरे- धीरे सरकते हुए लाल बत्ती के जल्दी से हरे होने की प्रतीक्षा में रहती हूँ। लेकिन अब यह तसल्ली रहती है कि कम से कम मैं इनसे बातचीत तो कर लेती हूँ। चारों तरफ हरियाली छा जाती है। कतारबद्ध नवपल्लवयुक्त वृक्ष, जो शीत ऋतु में योगियों की भाँति साधनारत थे, वे सहसा गृहस्थ बन जाते हैं और अपने परिवार के साथ होने की प्रसन्नता में ख़ूब हरियाते हैं, लहलहाते हैं और खुशी से लहराते हैं।

जब प्रकृति अपने-आप इतना कुछ कर देती है तो फिर इंगलैंड के लोग भी ग्रीष्म ऋतु का बाँहें खोल कर स्वागत करते हैं और अब तक अपने दड़बों में छुपे लोग घर के बाहर बगीचा सँवारते दिखाई पड़ने लगते हैं और सजाने लगते है अपने घर-आँगन को भाँति-भाँति के रंग-बिरंगे फूलों से। घर-आँगन ही क्या सड़कों के मध्य विभाजक रेखा रूपी गमले भी तरह-तरह के रंग-बिरंगे फूलों से सज जाते हैं। गर्मियों में नगरपालिकाएँ अपने शहर के सौंदर्य को बढ़ाने में एकदम तत्पर रहती हैं। हर जगह गमलों से झाँकते फूल यत्र-तत्र- सर्वत्र नज़र आने लगते हैं। कई महीनों के अँधेरे, ठंड, बर्फीले और गीले मौसम के बाद जब धूप बड़ी गर्मजोशी से आकर मुस्कुराते फूलों के साथ स्वागत करती हैं तो मन उत्फुल्लित हो उठता है। जी करता है कि उसे क़ैद कर लो। बस जी करता है कि धूप पी लो, धूप पहन लो, धूप से ही बातों करो, धूप की बातें करो।

समय का चक्र चलता रहता है, प्रकृति भाँति- भाँति के रूप धर कर लुभाती है। हम उसे ही भूले जा रहे हैं जो हमें हँसना- रोना सिखाती है। जीना सिखाती है, हर हाल में खुश रहना सिखाती है। जो आया है उसे जाना है। कुछ नष्ट नहीं होगा। सिर्फ रूप बदल जाएगा।

मैं अपनी रोज़ाना वाली सड़क पर होती हूँ चालीस मिनटों वाली इन यात्राओं के दौरान मैंने इतना कुछ सीखा है कि मैं हर तरह के परिवर्तन में शुभ खोजती हूँ। हर नए अनुभव को एक नई यात्रा के रूप में लेकर उसका भरपूर आनंद लेने का प्रयत्न करती हूँ और हर छोटी-बड़ी यात्रा की समाप्ति पर प्रभु को धन्यवाद देती हूँ। कार का कैसेट तेज़ कर देती हूँ और फिर एम. एस सुब्बलक्ष्मीजी की मधुर आवाज़ कानों में पड़ने लगती है, ..'पुनरपि जन्मम्, पुनरपि मरणम्.....।'

000

1.राउंड अबाउट- बहुत सारे रास्तों को जोड़नेवाला ऐसा जंक्शन जिसके बीचोंबीच एक गोलचक्कर बना हो। यूरोप में इन गोलचक्करों के रख रखाव पर काफ़ी ध्यान रखा जाता है और ये मौसमी फूलों से सजे रहते हैं।

2.लॉलीपॉप-मेन- सड़क के किनारे काले और चमकीले पीले कपड़े पहने खड़े रहते हैं। वे तेज़ रफ़्तार ट्रैफिक में सुरक्षित रास्ता पार करने के लिये आते-जाते वाहनों को 'स्टॉप' का लॉलीपॉपनुमा साइनबोर्ड दिखा कर रोकते हैं, लोगों के सड़क पार करने पर 'गो' का संकेत दिखाकर जाने का निर्देश देते हैं।

3.स्लिप रोड-मुख्य सड़क से कटनेवाली छोटी सड़क

4. एम-5 मोटर-वे- राष्ट्रीय महामार्ग

धरती की सबसे खुबसूरत तस्वीरों में एक लेक टाहो

जयश्री पुरवार

अमेरिका में प्राकृतिक सौंदर्य बेमिसाल है। ख़ास तौर से उन जगहों पर जो शहर की भीड़भाड़ से दूर हैं। इन जगहों की ख़ूबसूरती तो मन में घर बसा लेती है। उन्हीं में से एक पर्यटन की जगह है कैलिफ़ोर्निया राज्य स्थित लेक टाहो।

झिलमिलाता विस्तार और गहरा नीला रंग लिये लेक टाहो अमेरिका के कैलिफ़ोर्निया और नवेडा राज्यों के बीच स्थित स्वच्छ मीठे पानी का विशाल और सुन्दर झील है। इसलिये यह दुनिया भर के पर्यटकों और पर्वतरोहियों के लिये स्वर्ग के समान स्वप्निल पर्यटन स्थल है। झील की विशालता का अंदाज़ा इससे लगाया जा सकता है कि यह 22 मील लम्बी, 12 मील चौड़ी और 1645 फीट गहरी है। सुन्दरता का अंदाज़ा ऐसे कि यह चारों ओर से पहाड़ों और देवदार के हरे भरे वृक्षों से घिरा हुई है। यह झील दो लाख साल पुरानी है। टाहो झील के एक सिरे पर बसा है शहर टाहो और दूसरे दक्षिणी तट पर बसा है स्कुवा वैली जिसे विश्व के सुन्दरतम रेज़ार्ट के रूप में जाना जाता है।

एक नया सबेरा-हर जगह नया रूप और नया रंग - हमने पहले से ही इस गन्तव्य के लिये ए सी बस में टिकट बुक करा लिया था। सवेरे पाँच बजे हम चल दिये जब सुबह का धुँधलका था पर कुछ ही देर में पौ फूटने लगी और हमने देखा कि सड़क के दोनों ओर बर्फ के ढेरों की चोटियाँ सूरज के किरणों की स्वर्णिम आभा से चमकने लगी थी। आसपास देवदार के दरख़्त और घरों की छतें, पहाड़ियाँ श्वेत रूई के फाहे जैसे बर्फ में लिपटी हुई, उन पर झिलमिलाती सूरज की रोशनी के दृश्य मनोरम थे। यह एक नया सबेरा था, जब हर जगह नया रूप और नया रंग बिखरा हुआ था। हमें लगा अमेरिका में सब कुछ ब्रांडेड है पर प्रकृति को मानव चाहे भी तो ब्रांडेड नहीं बना पाएँगे। लगभग नौ बजे बस रोक कर उसमें सुबह का नाश्ता परोसा गया। बस में तीस के लगभग यात्री थे। इस तरह के सामूहिक घुमक्कड़ी का मज़ा कुछ अलग ही होता है। सब लोगों ने एक साथ नाश्ता किया।

बर्फ़ के चादर से ढकी स्कुवा वैली - बस में बैठने के बाद कुछ ही देर में हम स्कुवा वैली पहुँच चुके थें। दूर-दूर तक पहाड़ कहीं- कहीं समतल तो कहीं ऊँचे- नीचे बर्फ की चादर से ढके हुए। नीचे शहरमें ही ठंड इतनी थी कि पहने हुए स्वेटर-कोट भी कम लग रहे थे। हमने देखा कि यह क़स्बा पर्यटकों के चहल-पहल से गुलज़ार था। लोग स्की बोर्ड और स्टिक उठाये, गरम ट्रैक सूट पहने तैयार थे स्कीइंग पर जाने के लिये। टिकट काउन्टर पर लम्बी कतारें लगी हुई थीं; जिसके बिना कोई ऊपर नहीं जा सकता था। शहर के बीच बना बाज़ार, वहाँ की रेस्तराँ-दुकानें, पार्लर सभी आगन्तुकों की भीड़ से गुलज़ार थे। जगह-जगह उम्रदराज़ स्त्री और पुरुष लोग अलाव के पास बैठकर हाथ सेकते हुए गुफ्तगु करने मे लगे थे।

हम लोग टिकट लेकर रोप वे के केबिन में बैठ गए। हमारा गंडोला धीरे-धीरे ऊपर जा रहा था। नीचे बर्फ से ढकी पहाड़ियाँ, कहीं सकरी, कहीं गहरी घाटियाँ और पाइन के दरख़्तों के घने जंगल-अदभुत् नैसर्गिक दृश्यों का रोमांचक आनन्द अनुभूति में था। बर्फीली और हरियाली दोनों नज़ारे एक साथ सामने थे। केबिन से बाहर निकलने के बाद स्कुवा वैली का स्कीइंग स्थल एक अभिनव छवि लिए सामने था। लोग श्वेत भुरभुरे बर्फ पर स्कीइंग कर रहे थे, तरह-तरह की कलाबाज़ियाँ दिखा रहे थे। प्रशिक्षक नव युवाओं को विभिन्न तरकीबें सीखा रहे थे। ऐसे में एक युवा स्कीइंग करते हुए तेज़ी से एक देवदार के वृक्ष से जा टकराया, जिस दुर्घटना को देखकर हमारे रोंगटे खड़े हो गए। सफ़ेद बर्फ़ पर चटक लाल खून की धार देखकर हमने आँखे बंद कर ली।

यह स्थान 1960 में बर्फ के खेलों के शीतकालीन ओलिम्पिक के आयोजन के लिए प्रसिद्ध है। इस आयोजन के समय बने ओलिम्पिक भवन, लॉज, खेल गाँव, पत्रकार भवन और प्रशासकीय भवन को आज भी यहाँ पर्यटकों के दर्शन के लिए संरक्षित रखा गया है। दोपहर का

जयश्री पुरवार
4 सी, ए 2, 311, सिल्वर सिटी 2,विप्रो चौराहा के पास, ग्रेटर नोएडा-201310
मोबाइल- 7905220370
ईमेल- jayshreepurwar@gmail.com

समय कैसे गुज़र गया पता ही नहीं चला। अब हम आराम करने के लिए यहीं हाई पॉइंट पर बने विशाल फूड कोर्ट अलेक्जान्ड्रिया रेस्तराँ में आकर बैठ गए। यह स्थान काँच की दीवारों से बन्द था। यहाँ बैठे कॉफ़ी पीते हुए बाहर हिमाच्छादित पर्वत शृंखलाओं को निहारना सुखद था। सब ओर फैले और छितरे हुए अल्पाइन चरागाह श्वेताभ दिख रहे थे।

पहाड़ी शहर टाहो की ओर - कुछ देर बाद हमने अल्पाइन चरागाह में घूमते हुए टैक्सी से टाहो जाने का निर्णय लिया। टाहो पहुँच कर रात बिताई, हार्ड रॉक होटल में। प्रात: जलपान के बाद हम फिर कोट स्वेटर से लदे फदे चल दिये घुमक्कड़ी के लिये टाहो गाँव की ओर; जो टाहो झील के किनारे ही बसा हुआ है। वास्तव में दक्षिण में आसपास इस पूरे क्षेत्र को टाहो कहा जाता है। साल भर हर मौसम में लोगों की यहाँ भीड़ बनी रहती है। क्यूँकि यह जगह शीतकालीन खेलकूद और ग्रीष्मकालीन मनोरंजन दोनों के लिये ही प्रसिद्ध है। टाहो को सुरम्य दृश्यों का घर कहा जाता है। यहाँ के स्की स्लोप्स और गोल्फ कोर्स में आसपास के शहरों से हज़ारों लोग अनुकूल और सुहावने मौसम में आते रहते है।

हैवेनलि माउन्टेन रिज़ॉर्ट का स्वर्गीय सौंदर्य - यहाँ सबसे प्रसिद्ध है हैवेनलि माउन्टेन रिज़ॉर्ट जो झील के दक्षिणी तट पर है। यहाँ पर भी रोप वे से ही ऊपर की पहाड़ियों तक पहुँचा जा सकता है। रोप वे से ऊपर जाते हुए हमने देखा कि सामने नीचे विशाल टाहो झील अपने गहरे नीले रंग में सुशोभन है। चारों और नीले पहाड़ और सुरभ्य हरे विभिन्न तरह के पाइन वृक्षों से घिरा हुआ। स्कुवा वैली की तुलना में यहाँ नैसर्गिक सौन्दर्य ज़्यादा आकर्षक और मनोहारी था।

स्कीइंग रिज़ॉर्ट पर स्कीइंग के अलावा वसन्त के आख़िरी दिनों में और पतझड़ के शुरू में यहाँ वाटर स्पोर्ट्स की व्यवस्था है। यहाँ पर सैलानी बोटिंग और पैडल बोटिंग का भी मज़ा लेते हैं। हमने मोटर बोट से झील के सैर का आनन्द उठाया। झील के नीले स्वच्छ जल के बीच मोटर बोट पर बैठे हुए ऊपर नीले आसमान को और चारों ओर सदाबहार

देवदार के वृक्षों से सुसज्जित भव्य पर्वत माला को निहारना जैसे किसी इन्द्रजाल में बाँध लेता है जिनका सौन्दर्य अन्तहीन है।

मोटरसाइक्लिंग के लिए भी लेक टाहो में असीमित सुविधाएँ हैं - इसके लिए लेक के चारों ओर सड़क बनी है या सड़क के बाहर भी यह सुविधा है। लेक के घेरे में क्लॉक वाइज़ घूमना सबसे लोक प्रिय मोटर साइक्लिंग है, विशेष कर युवा लोगों के लिए। तेज़ी से मोटरसाइकिल पर बैठ कर हवा से बातें करते हुए युवाओं को देखना रोमांचकारी था। साहसी लड़कियाँ भी इसमें शामिल दिखीं। साइक्लिंग के दोरान रुकने के लिए कई पॉइंट्स हैं जिसमें सबसे वैभवपूर्ण है किंग्स बीच। यहाँ से लेक टाहो का विहंगम दृश्य अपूर्व सौन्दर्यमय दिखता है। छोटी और सजी धजी आरामदेह रेस्तराओं में कॉफी पीना या मनपसन्द स्नैक्स लेना तो यहाँ एक ज़रूरी काम बन जाता है और हमने इस काम को बड़े चाव से पूरा किया।

जहाँ जुआ खेलना क़ानूनी है - इन सबके अलावा लेक टाहो में अनेक जगहों पर कैसीनो हैं, जहाँ लोग जुआ खेलते है और कई होटल्ज़ में भी यह व्यवस्था है। मज़े की बात यह कि यहाँ नवेडा प्रशासन ने जुआ खेलने को कानूनी घोषित किया हुआ है। हार्ड रॉक होटल जहाँ हम रुके थे, में भी कैसीनो सुलभ्य था। पर हम तो उससे दूर ही रहे।

दरख़्तों पर रोमांचक पार्क - टाहो में ट्री टॉप एडवेंचर पार्क भी है, जहाँ बच्चों से लेकर वृद्धों तक पूरा परिवार मिलकर आनन्द उठा सकता है। टाहो ट्रिप में उसे शामिल करना इसलिए भी ज़रूरी है कि यहाँ आप कुछ घण्टे अलग हटकर बिता सकते है। टाहो विस्टा का ट्री पार्क सबसे प्रसिद्ध है। यहाँ नब्बे ट्री प्लैटफ़ॉर्म है और लगभग साठ पुल है। यहाँ घूमना और प्रकृति की गोद में पुल पर चलते हुए एक पेड़ से दूसरे पेड़ के अंगना तक पहुँचना और निरुद्देश्य ट्रैक का आनंद उठाना रोमांचकारी और साहसपूर्ण तो है ही साथ ही आत्मविश्वास से भर देने वाला भी। कर्मचारियों का व्यवहार भी बहुत सहयोगी और आत्मीय था। हम काफ़ी देर तक इस ट्री पार्क में घूमते रहे।

लेक टाहो का मुकुट एमरेल्ड बे पार्क, ठीक ऐसा ही था लेक टाहो की मुकुटमणि।

विकिंग्सहम-स्वप्न लोक की राजकुमारी का महल - यहाँ का स्वप्न समान अजूबा है विकिंग्सहम का महल-स्वप्नलोक की राजकुमारी के महल जैसा। यह स्कैन्डेनेवियम वास्तुकला पर आधारित भव्य इमारत है जिसे 1929 में श्रीमती लोरानाइट ने बनवाया था। इस महल में 38 हवेलियाँ हैं। सफेद-भूरे पत्थरों और पाइन के दरख़्तों से आच्छादित उस टापू पर यह महल पर्वत शिखर पर स्थित रूपकथा की एक प्राचीन रहस्यमयी गढ़ी सी प्रतीत होती है। यहाँ पर तो हम मंत्रमुग्ध की तरह घूमते हुए किसी परीकथा की दुनिया में खो गए। यहाँ से वापसी हुई वही मोटर बोट के मोरपंखी नाव से। पूरा दिन एमेरेल्ड बे पार्क में बिताकर हम अपने हार्ड रॉक होटल में वापस आकर निद्रादेवी की गोद में सुकून की नींद सो गए।

कुल मिलाकर लेक टाहो के आसपास घूमने के लिए, देखने के लिए, अनुभव के लिए जो कुछ भी है सभी सदानवीन, सदाबहार और अद्भुत है। जहाँ से लौट आने के बाद भी मन वापस वहीं चला जाता है। जैसे सात समंदर पार करके मोरपंखी नाव पर सवार होकर किसी परीलोक में पहुँच जाना फिर धरती पर वापस आना। सचमुच में यह जगह धरती की सबसे ख़ूबसूरत तस्वीरों में एक थी।

000

झील किनारे बसा भव्य शहर: चैस्टरमेरे, कैनेडा

बलविन्दर 'बालम'

एडमिंटन (कैनेडा) से मैं तथा डॉ. हरिन्दर पाल ने प्रयोजन बनाया कि कैलगरी शहर के नज़दीक झील किनारे पर बसा एक ख़ूबसूरत छोटा सा शहर 'चैस्टरमेरे' है। क्यों न इसको देखने जाया जाए।

हमने कैलगरी के मशहूर 106.7 एफ.एम. रेडियो के न्यूज़ रीडर सतेन्दर सुकरात को फ़ोन मिलाया। उससे 'चैस्टरमेरे' शहर की ख़ूबसूरती के संबंध में बातचीत हुई तो उसने कहा कि आप शनिवार को कैलगरी मेरे निवास स्थान पर आ जाओ।

मैं तथा डॉ. हरिन्दर पाल हम एडमिंटन से अपनी कार लेकर लगभग तीन घण्टे का सफ़र तय करके कैलगरी सतेन्दर सुकरात के निवास स्थान सैटल स्टोन में पहुँच गए।

सुबह हम तीनों कैलगरी से कार के ज़रिए लगभग 15 किलोमीटर की दूरी तय करके पूर्व की ओर एक ख़ूबसूरत जन्नतनुमाँ झील के किनारे बसा शहर 'चैस्टरमेरे' पहुँच गए।

जन्नत की कल्पना का सृजनात्मक मंडल विधान है झील किनारे बसा शहर 'चैस्टरमेरे'। हमने गाड़ी एक साइड पार्किंग में लगा दी। दूर-दूर तक झील के निर्मल स्वच्छ, शुद्ध पानी की आतमीयता से संवेदनशीलता की तरलता का अहसास होने लगा। कुदरत का अस्तित्व तथा ख़ूबसूरती की आध्यात्मिकता और सुखद शांति की आस्था से खींचा आत्मिक-आंतरिक ऊर्जा स्रोत है।

झील के किनारों की दोनों ओर भव्य शिल्प कला में निपुण घरों की पंक्तियाँ, छोटी-छोटी सूक्ष्मताओं तथा महत्त्वपूर्ण दृश्य कलात्मिक प्रस्तुति उजागर कर रहीं थीं।

किनारों के साथ-साथ झील के पानी को चूमती घरों की दहलीज़ें तथा पीठ तत्त्व दूर से ऐसे प्रतीत हो रहे थे जैसे कुदरत के दरवाज़े के प्रवेश द्वार जन्नत के बंदनवार सजाए हों।

आँखों के प्रवेश द्वार जरिए दिल, दिमाग़, रूह (आत्मा) में एक सुकून, शालीनता तथा गरिमा का सृष्टि आनंद सारे शरीर को आकर्षण के माध्यम से प्रतिबिम्बों तथा मूर्त बिम्बों से माला माल कर देता।

झील के साथ-साथ घरों की लम्बाई की सुन्दर पंक्तियाँ, भव्य शैली में कई प्रजातियों के छोटे-बड़े तरतीबनुमाँ वृक्ष, कई जातियों तथा रंगों के अद्‌भुत भव्य फूल, बाग़-बग़ीचे, आकर्षक सुविधाजनक पार्क, हरे-भरे गद्‌देदार मख़मली घास वाली भूमि की मनोहर खट्‌टी-खट्‌टी खुश्बू, गोरे-गुलाबी रंग के शांतमई स्वभाव वाले तंदुरुस्त-पुष्ट लोग, चारों ओर सफाई-स्वच्छता का भव्यता के दृश्यों ने नवीन सुन्दरता प्रदान करके जन्नत को जैसे अभिवादन की मुद्रा में खड़े कर दिया हो।

यहाँ कण-कण-क्षण-क्षण में सफाई अपने अस्तित्व को स्पष्टता में सुनिश्चित करके जन्नत के दरवाज़े खोल देती है। चैस्टरमेरे शहर प्रकृति तथा वैज्ञानिक कला सृजना का नवीनतम-परिधान में जन्नत का पर्यायवाची है।

सदियों पहले यह स्थान केवल एक बे-आबाद, ऊबड़-खाबड़ झील ही थी। उस समय कुछ किसानों (कृषकों) ने खेतीबाड़ी(कृषि) मनोरथ से अपना कारोबार (जिजीविषा) शुरू की। झील के क्षेत्र को विस्तार देने में बहुमूल्य योगदान डाला।

जब कनेडियन रेलवे विभाग 1880 में स्थापित हुआ। रेलवे के रुझान के कारण ही झील के इर्द-गिर्द लोग बसने शुरू हुए। आहिस्ता-आहिस्ता लोगों ने झील के संपर्क रास्ते बनाने शुरू कर दिए।

1907 में डैम तथा नहरों की योजना आरंभ हुई। नहरों के लघु संगम को झील के रूप में

बलविन्दर 'बालम'
30 एवेन्यू NW एडमंटन, T6T0V7
एल्बर्टा, कनाडा
मोबाइल- 98156-25409
ईमेल- balambalwinder@gmail.com

बदल दिया। इसके पानी का सदुपयोग होने लगा। समय की करवट से यह झील मनोरंजन का साधन बनती गई।

लोगों ने ज़िला नहरी विभाग से झील किनारे वाली ज़मीन 'लीज़' पर लेनी शुरू कर दी तथा लोगों ने छोटे-छोटे घर बनाने शुरू कर दिए। गर्मियों की छुट्टियों में मालिक अपने सपरिवार यहाँ आकर दिन व्यतीत करते।

रिहायशी मालिकों ने 1959 के करीब मिलकर 50 सदस्यों की एक सोसायटी बना ली। इस प्रयोजन से अनेक सरकारी सुविधाएँ मिलनी शुरू हो गईं। सड़कों, संपर्क रास्तों, पग-डंडियों का सुविधापूर्वक निर्माण हो गया। फिर यहाँ के मालिकों को पक्के (स्थाई) तौर पर ज़मीन अलाट हो गई।

सन् 1977 में सबसे पहले एक सौ बीस पक्के रिहायशी घर बनाए गए तथा इस स्थान का नाम 'समर हिल्ज़ चैस्टरलेक' रखा गया। फिर राजनीतिक तथा म्यूनिसिपल कॉर्पोरेशन की मदद से सभी भौतिक, दैहिक, व्यापारिक, सामाजिक ज़रूरतें अस्तित्त्व में आ गईं। सन् 1991 में यहाँ की जनसंख्या बढ़ने लगी। तथा 1043 पक्के रिहायशी घर हो गए। मार्च 1, 1993 को सरकारी तौर पर मान्यता मिली तथा इस स्थान का नाम 'दा-टाऊन-ऑफ-चैस्टरमेरे' रख दिया गया।

सन् 2014 में इसकी जनसंख्या लगभग 17203 हो गई। तथा यह स्थान एक जन्नतनुमाँ-भव्य शहर बन गया। यहाँ के वैज्ञानिकों ने प्रकृति की मेहरबानियों को और मालामाल करने के लिए आधुनिकता का सहारा लेकर, नवीन आविष्कारों के बलबूते पर कलात्मक विधियों को, यहाँ की भूमि को भव्य बलशाली, समानता, शांति, नैतिक भावना, उर्वर, तथा अनेकानेक नायाब उपलब्धियाँ देकर प्रकृति तथा मानवतावादी का सौहार्दयपूर्ण चिर स्थाई उत्सव बना दिया।

इस स्थान को 'रौकी व्यू कंटरी' भी कहते हैं। क्योंकि इसके इर्द-गिर्द दूर-दूर तक पर्वतीय क्षेत्र है। अल्बर्टा (कनेडा) स्टेट के भव्य पहाड़ी क्षेत्र-कैनमोर, जैसपर, बैंफ, लेकलूई, नेलमाऊट आदि इसके समीप हैं। इनकी पहाड़ियाँ दूर से नज़र आती हैं।

लगभग पाँच मील लम्बी इस झील में किश्तियाँ, मछली पकड़ना, स्केटिंग, साइक्लिंग, तथा अन्य और पहाड़ी खेल क्रियाओं की भरमार है। अनेक उत्त्सवों का संगृह। सर्दियों में भी अनेक बर्फीली क्रीड़ा क्रियाएँ होती हैं।

झील के आर-पार सूर्योदय तथा सूर्योस्त के दिव्य मनोहर दृश्य देखने योग्य होते हैं। आँधी-बरसात के अस्तित्त्व में इंद्रधनुषों का समूह अपनी सुषमा को अलंकारित करके झील की भव्यता को चार चाँद लगा देता है। बच्चों के लिए यह स्थान जादू की छड़ी जैसा, अद्भुत, जिज्ञासामई, आत्मभावी, प्रीति, स्मृति, मैत्रीभाव का मर्मस्पर्शी स्थान। यह प्रसिद्ध पिकनिक स्थान स्वर्ग का पर्यायवाची है।

000

लेखकों से अनुरोध

'विभोम-स्वर' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फ़ाइल अथवा वर्ड की फ़ाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीऍफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें, इस प्रकार की रचनाएँ विचार में नहीं ली जाएँगी। रचनाओं की साफ़्ट कॉपी ही ईमेल के द्वारा भेजें, डाक द्वारा हार्ड कॉपी नहीं भेजें, उसे प्रकाशित करना अथवा आपको वापस कर पाना हमारे लिए संभव नहीं होगा। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। पुस्तक समीक्षाओं का स्वागत है, समीक्षाएँ अधिक लम्बी नहीं हों, सारगर्भित हों। समीक्षाओं के साथ पुस्तक के कवर का चित्र, लेखक का चित्र तथा प्रकाशन संबंधी आवश्यक जानकारियाँ भी अवश्य भेजें। एक अंक में आपकी किसी भी विधा की रचना (समीक्षा के अलावा) यदि प्रकाशित हो चुकी है तो अगली रचना के लिए तीन अंकों की प्रतीक्षा करें। एक बार में अपनी एक ही विधा की रचना भेजें, एक साथ कई विधाओं में अपनी रचनाएँ न भेजें। रचनाएँ भेजने से पूर्व एक बार पत्रिका में प्रकाशित हो रही रचनाओं को अवश्य देखें। रचना भेजने के बाद स्वीकृति हेतु प्रतीक्षा करें, बार-बार ईमेल नहीं करें, चूँकि पत्रिका त्रैमासिक है अत: कई बार किसी रचना को स्वीकृत करने तथा उसे किसी अंक में प्रकाशित करने के बीच कुछ अंतराल हो सकता है।

धन्यवाद
संपादक
vibhom.swar@gmail.com

मिर्ज़ा की याद में

उर्दू से अनुवादित व्यंग्य
मूल रचना - मुजतबा हुसैन
अनुवाद - अखतर अली

अखतर अली
निकट मेडी हेल्थ हास्पिटल, आमानाका,
रायपुर (छत्तीसगढ़)
मोबाइल- 9826126781
ईमेल- akhterspritwala@gmail.com

मिर्ज़ा सरकारी नौकरी से रिटायर्ड हुए तो मैं उन्हें बधाई देने गया। हालाँकि बधाई का असली हकदार वह विभाग था जहाँ से मिर्ज़ा रिटायर्ड हुए थे; क्योंकि मिर्ज़ा को रिटायर्ड कर विभाग भार मुक्त हुआ था। मेरे को देख कर मिर्ज़ा वैसे ही रोने लगे जैसा पिछले तीन दशक से उन्हें देख विभाग रो रहा था।

मैंने कहा – मिर्ज़ा रो क्यों रहे हो तुम को तो खुश होना चाहिए कि तुमने तीस साल तक बिना काम किए सरकार को अपनी सेवाएँ दी है। मिर्ज़ा की गिनती उन सरकारी कर्मचारियों में होती थी जो कर्मचारी कम सरकारी ज़्यादा होते है। मिर्ज़ा तो बचपन से ही सरकारी थे क्योंकि इन्हें जब भी कोई काम बताया जाता था वह पेंडिंग हो जाता था। कुछ बरस पहले मिर्ज़ा ने अपने दफ्तर में हिन्दी दिवस के अवसर पर एक गोष्ठी का आयोजन किया था; जिसमें मैंने भी अपनी हास्य व्यंग्य की रचना का पाठ किया था। रचना पाठ के दौरान मैंने महसूस किया कि पहले इस कोने वाले हँसते थे फिर उस कोने वाले हँसते थे, फिर इस तरफ़ वाले हँसते थे फ़िर उस तरफ़ वाले हँसते थे। बाद में मैंने मिर्ज़ा से पूछा कि तुम्हारे दफ़्तर वाले इस तरह टुकड़ों में क्यों हँस रहे थे ? इस पर मिर्ज़ा ने बताया – यह सरकारी महकमा है यहाँ हर काम थ्रू प्रापर चैनल होता है पहले चीफ़ सेक्रेटरी हँसे, उसके बाद असिस्टेंट सेक्रेटरी हँसे, फिर क्लर्क और प्यून हँसते है। आप शायद नहीं जानते क्लर्क की हँसी को दबा देने की पुरानी आदत है। मिर्ज़ा इस थ्रू प्रापर चैनल के इतने आदि हो गए थे कि घर में छोटा बेटा शरारत करता तो पहले बीवी को पीटते फिर बड़े बेटे

को फिर मँझले बेटे को तब छोटे बेटे की पिटाई करते।

मिर्ज़ा ने अपनी तीस साला नौकरी में बस एक काम ज़िम्मेदारी से किया है और वह काम है हाज़री रजिस्टर में दस्तखत करना। मैंने पूछा था कि मिर्ज़ा जब तुम ऑफ़िस में कोई काम करते ही नहीं हो फिर दस्तखत भी क्यों करते हो ? इस पर मिर्ज़ा ने बताया कि मैं काम करने के लिए दस्तखत नहीं करता हूँ बल्कि इसलिए करता हूँ, क्योंकि दस्तखत करना भी एक काम है। सरकार मेरे को जितनी तनख्वाह देती है उसमें दस्तखत करने जितना ही काम किया जा सकता है। दस्तखत कर के मैं अपने होने का सबूत देता हूँ।

हाज़री रजिस्टर में दस्तखत करने से मिर्ज़ा को थकावट महसूस होने लगती और एक कप चाय पीने का मन करता तो मिर्ज़ा हाज़री रजिस्टर को एक तरफ़ फेंक कर ऐसे आदमी की तलाश में निकल पड़ते जो उन्हें चाय पिला दे। इस दौड़ भाग के बाद जब बारह बजे मिर्ज़ा अपनी सीट पर पहुँचते तो उन्हें लंच का ख़याल आ जाता और वह खाना खाने चले जाते। खाना खाने के बाद एक पान और फिर सिगरेट के कश लेने के बाद मिर्ज़ा अपने टेबल पर पड़ी फ़ाइलों की धूल झाड़ने लगते और उन्हें सूँघ-सूँघ कर अपनी जगह पर वापस रख देते। मिर्ज़ा के टेबल पर फ़ाइलें इतने लंबे समय से रखी हुई थीं कि फाइलों की अपनी सुगंध तो ख़त्म हो गई थी और उसमें मिर्ज़ा की बू समा गई थी। उनके साथी कर्मचारी फ़ाइल सूँघ कर ही बता देते थे कि फाइलों के ढेर में कौन सी फाइल मिर्ज़ा की है। फाइलों की धूल झाड़ने के बाद मिर्ज़ा कुछ देर अपनी कुर्सी पर भी बैठ जाते थे ताकि कुर्सी की धूल भी साफ़ हो जाए।

मिर्ज़ा का यही तरीका था कि दफ़्तर पहुँचते ही बिना समय बर्बाद किये फाइल हाथ में लेते धूल झाड़ने के लिए और अपनी सीट पर बैठते उसमें जमी धूल साफ़ करने के लिए फिर टेबल पर अपनी टोपी रख कर अज्ञात स्थान की ओर निकल पड़ते। मैं जब भी मिर्ज़ा से मिलने उनके ऑफ़िस गया मेरे को वहाँ उनकी टोपी ही मिली है मिर्ज़ा कभी नहीं मिले। मैंने उनकी टोपी उठाकर भी देखा कि शायद टोपी के नीचे मिर्ज़ा भी हों पर वह वहाँ कभी नहीं थे। न कभी टोपी के नीचे मिर्ज़ा मिले न कभी मिर्ज़ा के ऊपर टोपी मिली।

मिर्ज़ा लंच बाक्स में कभी भी दो चपाती से ज़्यादा नहीं लाए और इसे खाने में उनको तीन घंटे लगते थे। लंच से आते ही घर जाने की तैयारी में जुट जाते। कभी-कभी ऐसा भी होता था जब वे ऑफ़िस में रहते थे तो पूरे समय घड़ी देखते रहते कि पाँच कब बजेंगे और कब छुट्टी होगी। इस बीच कोई मिर्ज़ा से टाइम पूछता तो बताते अभी दो घंटे बाकी है, ढाई घंटे बाकी है। इस तरह ऑफ़िस से जाने का वक़्त देखते-देखते एक दिन नौकरी से जाने का वक़्त आ गया।

मिर्ज़ा की टेबल पर भाँति-भाँति की फ़ाइल रखी रहती थी। इस संबंध में उनका कहना था कि इन फ़ाइलों से उनका कोई ताल्लुक नहीं है क्योंकि जब वे यहाँ आए थे तब ये फ़ाइलें यहाँ पहले से मौजूद थी। अब ये उन्हें बुज़ुर्गों की निशानी मान कर सहेजे हुए हैं। मिर्ज़ा को छुट्टी लेने में महारथ हासिल थी। आए दिन वह अचानक तबियत ख़राब हो जाने के कारण दफ़्तर आने में असमर्थ हूँ जैसा आवेदन भेज देते थे। एक दिन बॉस ने कहा कि कब तक एक जैसा झूठ लिखते रहोगे कभी तो छुट्टी के लिए नया झूठ पेश करो, अत: मिर्ज़ा ने छुट्टी के आवेदन में लिखा – आज बहुत दिनों बाद तबियत अच्छी लग रही है इसलिए परिवार के साथ घूमने फ़िरने के लिए एक दिन की छुट्टी देने की कृपा करे। जब-जब मिर्ज़ा सही में बीमार हुए हैं तब उन्होंने कभी छुट्टी नहीं ली; क्योंकि उनका कहना था कि डॉक्टर ने आराम करने का कहा है और घर में यह मुमकिन नहीं है।

रिटायर्ड होने के बाद जब मैं मिर्ज़ा से मिला तो वे बोले अब तो क़ब्रिस्तान वाले ऑफ़िस में नियुक्ति का वक्त आ रहा है। क़ब्र भी एक फ़ाइल है जिसमें इंसान के कर्मो का लेखा-जोखा मौजूद रहता है। इस फ़ाइल का न तो कोई पेज फटा हुआ रहता है, न कोई लाईन कटी हुई रहती है।

000

लघुकथा

भोजन माता

सुरेश सौरभ

भोजन माता ने स्कूल में खाना बनाया, पर तमाम बच्चों ने खाने से मना कर दिया। अध्यापकों ने बहुत समझाया, पर बच्चे ज़िद पर अड़े रहे, कहा-नीची जाति की है भोजन माता, इसलिए कभी न खाएँगे?

फिर ऊँची जाति की भोजन माता को बुलाया गया। उसने खाना बनाया। अब दूसरे धड़े के बच्चों ने कहा-हम भोजन न करेंगे? क्योंकि भोजन माता सवर्ण जाति की है। हमें जो नीचा मानें, हम उसके हाथ का क्यों खाएँ?

अध्यापकों ने उन्हें बहुत समझाया, पर बात न बनी। बात मीडिया तक पहुँची। हड़कम्प मचा। शिक्षा के बड़े अधिकारी वहाँ पहुँचे। बच्चों को समझाते हुए कहा-जैसे विद्या माता की कोई जाति नहीं होती। वह सबको समान मानते हुए, सबको ज्ञान और विद्या प्रदान करती है, ऐसे ही भोजन माता भी बिना भेदभाव के ममता और करुणा से सब बच्चों की सेवा करती है।

अब बच्चों ने कहा-यह बात हमें नहीं, हमारे माँ-बापों को समझाओ। गाँव के लोगों को समझाओ। अधिकारी सन्न थे। काटो तो उनके खून नहीं।

000

सुरेश सौरभ
मोबाइल- 7376236066
ईमेल- sureshsaurabhlmp@gmail.com

देश का ग़रीब नंबर वन

कमलेश पांडे

जाने उसे देख कर क्यों लगा कि यह ग़रीबी में नंबर एक हो सकता है। कह रहा था कि उसके सात पुश्तों में किसी को अमीरी छू तक नहीं गई। कई अमीरों के बारे में सुनते आए हैं कि कभी ग़रीब थे, पर अचानक अमीर होने लगे और होते चले गए। उसके साथ ऐसा कोई हादसा नहीं हुआ। ग़रीब था, ग़रीब ही होता गया। वह देश की बड़ी आबादी की तरह कोरा, सच्चा ग़रीब था और साफ़ लग रहा था कि अब उसके और ज़्यादा ग़रीब होने की गुंजाईश नहीं बची।

मेरे पास उसकी बात को मान लेने के सिवा कोई रास्ता नहीं था। होता तो मैं ज़रूर उस पर चल पड़ता। ग़रीबी के संदर्भ में किसी रास्ते पर चलो कोई फ़र्क नहीं पड़ता। उधर दुनिया के अमीरों को ढूँढ़-ढूँढ़ कर उन्हें टॉप टेन, टॉप हंड्रेड आदि सूचियों में डाल कर पहला दूसरा नंबर देने में दुनिया भर के संस्थान लगे हैं। ये अमीर बिलियन डॉलर में और बिलियन जोड़-घटा कर हर साल नंबरों के पायदान में ऊपर नीचे चहलकदमी करते रहते हैं। पैसों के पेड़ लगने तो अभी शुरू नहीं हुए, पर रुपये छापने की मशीनें ज़रूर हैं। ऐसी मशीनों की मालिक देशों की सरकारें होती हैं जो अमीरी की रैंकिंग में नहीं जुड़तीं, भले उनके खज़ाने की थाह लेना भी मुश्किल हो। ग़रीबों के मामले में बस एक ग़रीबी की रेखा रस्सी की तरह तान दी गई है कि पकड़ कर लटके रहो। जब कोई महायुद्ध, या आपदा या महज महँगाई ही इस रस्सी को झकझोरती है तो कई लद्द से नीचे जा गिरते हैं। ग़रीबी की रेखा के नीचे कितना गहरा गड्ढा है, कोई नहीं बताता। उस ग़रीब दोस्त को देख यही लगा कि वो नीचे एकदम गर्त में गिर कर चित्त पड़ा है।

हाल में ही अमीरी की क्लास में पाँचवीं रैंक हासिल करने वाले अपने ही देश के एक अमीर के बारे में पता चला कि वे एक दिन में ही पैंसठ हज़ार करोड़ कमा लेते हैं। हमारे ग़रीब दोस्त को पैंसठ रुपये तो क्या अक्सर पैंसठ पैसे भी नहीं मिल पाते। इन दिनों हमारा देश अच्छे छात्रों की तरह किस्म-किस्म की वैश्विक रैंकिंग की प्रतियोगिताओं में बैठ रहा है, इसके बावजूद कि गुरुओं की रैंकिंग में पहले से ही नंबर वन घोषित है। इन्हें इंडेक्स कहते हैं जिनमें देशों की काबिलियत को तरह-तरह के पैमानों पर नापा जाता है। उपलब्धियाँ आँकड़ों में बताई जाती हैं, इसलिए देश अच्छे आँकड़ों के उत्पादन में लगा है। अगर सब कुछ योजना के मुताबिक रहा तो जल्द ही देश सभी इंडेक्सों में ऊपर जा बैठेगा। चलिए देश का तो हुआ, अब ज़रा अपने ग़रीब दोस्त के बारे में भी विचार कर लें। वैसे एक भुखमरी का इंडेक्स भी है और तमाम आमदनी और

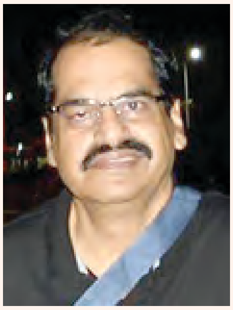

कमलेश पांडे
बी-260, पॉकेट-12, केंद्रीय विहार
सेक्टर-12, नोएडा (उ.प्र.)
मोबाइल- 8383016604
ईमेल- kamleshpande@gmail.com

खर्चों के भी। पर मेरे जाने अमीरों की तरह ग़रीबों को रैंक देने के लिए अभी कोई इंडेक्स नहीं बना।

मेरे विचार में ग़रीबों की रैंकिंग के लिए वैश्विक दृष्टिकोण का त्याग कर आत्मनिर्भर होना होगा। अमरीका और सोमालिया की ग़रीबी में भारी फ़र्क है। अमेरिका में ग़रीब को सरकार इतना भत्ता देती है कि वह अपार्टमेंट के साथ कार भी रख लेता है। उधर सोमालिया में शरीर में जान रखना भी मुश्किल हो जाता है। हमारे देश में ग़रीब होने पर एक बढ़िया कार्ड मिलता है जिसे दिखा कर कभी-कभी झोला भर अनाज मिल जाता है। कईयों को शून्य राशि का बैंक खाता भी मिलता है। हमारे यहाँ जो ग़रीब न हो उसे खाता-पीता आदमी कहते हैं। इससे यह सोचना ग़लत होगा कि ग़रीब खाते-पीते नहीं। ज़िंदा रहने के जुगाड़ी हुई रोटी के अलावा क़र्ज़ और गालियाँ ख़ूब खाते हैं। पीने में भी पीछे नहीं हैं ग़रीब, शायरों का बताया ग़म, आँसू, ज़हर आदि के अलावा प्रशासन द्वारा उपलब्ध कराया ठर्रा ख़ूब पीते हैं, जो कई बार ग़रीबी के साथ-साथ ज़िंदगी से भी मुक्ति दिला देता है।

खैर, हम रैंकिंग की बात पर थे। अपने देश में ग़रीबी नापना आसान नहीं है। यहाँ भाँति-भाँति के ग़रीब पाए जाते हैं, जिन्हें पहचानने के लिए ग्रहणबोध काम में आता है। इसलिए रैंकिंग के लिए जो सर्वे हो, उसके लिए बनी प्रश्नावली में पहला प्रश्न हो कि क्या तुम ग़रीब दिखते हो? ग़रीब को ग़रीब तो दिखना ही चाहिए, वरना लोग मानने से इनकार कर देते हैं। फ़ोटो खींच कर सोशल मीडिया पर औरों से तस्दीक करवाते हैं कि देखो हट्टा-कट्टा बंदा कपड़े पहने सड़क पर चला जा रहा है, कहाँ से ग़रीब दिखता है! तो, ग़रीब दिखने के पैमाने तय किये जाएँ। कपड़े हों कि न हों, केवल लंगोटी ही तन पर हो तो कितनी फटी हो। कितना वज़न हो कि हट्टा कट्टा न कहलाए, सिर्फ पसलियाँ गिनी जानी काफी हों या पिचके पेट में आँतों का आभास मिलना भी ज़रूरी हो। वह सड़क पर चले तो कैसे चले, या सिर्फ घिसटता हो। ये सब लिस्ट में डाल कर नंबर दे दिए जाएँ।

ग़रीब नंबर वन ढूँढ़ना है तो सवाल भी नंबर वन होंगे। घर है कि नहीं, रोज़ चूल्हा जलता है या नहीं, बीमार पड़ने पर ईलाज होता है या सीधे मर ही जाते हो- टाइप के सवाल नहीं चलेंगे। ऐसे तो देश में करोड़ों मिल जाएँगे। अगला सवाल है कि क्या तुम्हें पता है कि तुम ग़रीब हो? ग़रीबी सापेक्ष होती है। अपने से ज़्यादा ग़रीब दिख जाए तो अमीरी महसूस होती है। नंबर वन की अर्हता के लिए इस सवाल का जवाब है- नहीं। ग़रीब इस उम्मीद से ऊपर उठ गया हो कि अच्छे दिन आकर उसकी ग़रीबी को ख़त्म कर देंगे। वैसे भी सरकार अपनी ग़रीब-कल्याण योजनाओं के साथ ग़रीबों के पीछे पड़ी रहती है। अगर ग़रीब को अपनी ग़रीबी का पता हो तो ऐसी किसी योजना से अपनी ग़रीबी की तासीर को कम करवा लेगा।

अंत में पत्रकारों को प्रिय ये प्रश्न जो वे मरते या मर चुके आदमी से भी पूछ लेते हैं कि आप कैसा महसूस कर रहे हैं। इसका सही जवाब है- मालूम नहीं। सच्चा ग़रीब केवल अपनी साँसों को चलाए रखने के लिए पेट में कुछ डालने की जुगत में इतनी मुहलत भी नहीं पाता कि कुछ महसूस करने की रईसी कर सके। दिखने को वह और बहुत कुछ करता दिख सकता है मसलन भीड़ में नारे लगाता, बस-रेलों में धक्के खाता या महामारी में मीलों पैदल चल कर घर जाता, पर महसूस कुछ नहीं करता। शायद भेड़ें भी कुछ महसूस करती होंगी पर असली ग़रीब नहीं कर पाता। करता तो शायद आत्महत्या कर लेता या क्रांति ही कर देता।

प्रश्नावली को और लम्बा कर सकते हैं, पर कोई ख़ास फायदा नहीं होगा। ऐसे ग़रीब जो ग़रीब दिखते हों, नहीं जानते हों कि वे ग़रीब हैं और अच्छा-बुरा कुछ भी महसूस नहीं करते हों प्रश्नावली भरने को तैयार हो जाएँ तो काम शुरू कर दूँ। मेरा ग़रीब दोस्त, इस सूची का पहला रिस्पान्डन्ट होगा, तय है। मेरा अनुमान है कि ग़रीबी में टॉप वन मिलियन की सूची तो अपने देश में ही बन जाएगी। आगे दुनिया को भी देख लेंगे।

000

लघुकथा

एक थी गुड्डी

भारती शर्मा

घर-परिवार, आस-पड़ोसी सब उस पर गर्व करते, 'गुड्डी' थी ही इतनी होनहार और समझदार। एक उज्ज्वल भविष्य का सपना आँखों में लिए वह पढ़ाई में हमेशा अव्वल रहती। वह भी अपनी बड़ी बहन से बहुत प्यार करता था।

जब भी उसका रिज़ल्ट निकलता, वह पूरी कालोनी में बहन की कामयाबी के नारे लगाता भागता...'मेरी दीदी फर्स्ट आई है' जैसे कोई कार्यकर्ता पार्टी लीडर के लिए नारे लगा रहा हो।

साल-दर-साल यही क्रम चलता रहा।

इस वर्ष भी वह अपनी बहन के लिए नारे लगाता दिखाई दिया। बस इस बार नारा बदल गया था, 'गुड्डी को न्याय दो'...'हत्यारों को फाँसी दो'!!!

000

भारती शर्मा 'अभिनव प्रयास', स्ट्रीट-2, चन्द्रविहार कालोनी, नगला डालचन्द, क्वारसी बायपास, अलीगढ़- 202001 (उ.प्र.)
मोबाइल- 8630176757
ईमेल- bharti31775@gmal.com

संस्मरण

मैं और हिन्दी

लेखक-प्रो. जियांग जिंगकुई
अनुवाद- विवेक मणि

प्रो. जियांग जिंगकुई
निदेशक, दक्षिण एशियाई अध्ययन केंद्र,पेइचिंग विश्वविद्यालय, चीन

विवेक मणि त्रिपाठी
सहायक प्रोफ़ेसर (हिन्दी), क्वान्तोंग विदेशी भाषा विश्वविद्यालय, चीन
डॉ. अखिलेश्वर त्रिपाठी, वार्ड संख्या - 6, MJK नगर, पक्की फुलवारी, बेतिया, पश्चिमी चंपारण, बिहार 845438
मोबाइल- 9958550683
ईमेल- vmtripathi@gdufs.edu.cn

जब भी मेरा पत्रकारों से साक्षात्कार होता है, हर बार उनका पहला प्रश्न यहीं होता है कि "प्रो. जियांग, आपने हिन्दी क्यों पढ़ी?" जैसा कि वे मुझसे अपना प्रत्याशित उत्तर सुनना चाहते हैं कि मैं कहूँगा कि "मुझे हिन्दी अच्छी लगती है।" लेकिन हमेशा मेरा उत्तर होता है कि "मैंने हिन्दी को नहीं चुना है, बल्कि हिन्दी ने मुझे चुना है।"

मैं चीन के च्यांग सु प्रान्त के शु यांग जिले से हूँ, शु यांग जिला च्यांगसु प्रान्त में अपेक्षाकृत पिछड़ा माना जाता है। वर्ष 1985 में मैंने 12 वीं उतीर्ण करने के बाद विश्वविद्यालय प्रवेश परीक्षा में शामिल हुआ। मैंने चीन के प्रतिष्ठित एवं सबसे प्रसिद्ध पेइचिंग विश्वविद्यालय में अंग्रेज़ी विषय में स्नातक करने के लिए आवेदन किया था, लेकिन जब मुझे विश्वविद्यालय द्वारा नामांकन पत्र प्राप्त हुआ तो उसमें हिन्दी विषय लिखा हुआ था। वास्तव में, मैं एक ग्रामीण विद्यार्थी था, हिन्दी किस देश की भाषा है, मुझे यह भी पता नहीं था। सत्य कहूँ तो भारत के बारे में मैं पूरी तरह से अनभिज्ञ था, लेकिन मैं गाँव से निकलकर अपना भाग्य बदलना चाहता था, इसलिए पेइचिंग विश्वविद्यालय में हिन्दी पढ़ने जाने के लिए बहुत ही उत्सुक था। इस प्रकार हिन्दी ने मुझे चुना और भारत की यह बिंदी मेरे जीवन एवं आजीविका की अभिन्न अंग बन गई।

वर्ष 2000 के पहले, चीन में केवल पेइचिंग विश्वविद्यालय में ही हिन्दी विषय में स्नातक पाठ्यक्रम था, लेकिन विश्वविद्यालय में हिन्दी में नामांकन का वर्ष अनिश्चित था, मुझसे पहले वर्ष 1979 में हिन्दी (प्रतिष्ठा) में नामांकन हुआ था, मेरे बाद पुन: 1988 में नामांकन हुआ। वर्तमान समय में नए विद्यार्थियों के लिए नामांकन वर्ष निश्चित कर दिया गया है, प्रत्येक दो वर्ष पर एक बार हिन्दी (प्रतिष्ठा) में नामांकन होता है, दस से अधिक विद्यार्थियों का नामांकन होता है, कम से कम 11-12 तथा अधिक से अधिक 15-16 नामांकन होते हैं। पेइचिंग विश्वविद्यालय में प्रवेश के बाद हमारे शिक्षक ने हमसे कहा कि आप लोग मन लगाकर पढ़िए, यदि आप कक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त करते हैं तो वह पूरे चीन में प्रथम स्थान होगा।

गाँव से आने वाले मुझ साधारण से विद्यार्थी में कोई विशेष गुण नहीं था। मुझे केवल मेहनत से पढ़ना था, इसलिए कक्षा में मैं हमेशा प्रथम स्थान पर रहता था, और "देश में प्रथम स्थान" के मैडल पर मेरा नाम अंकित हो चुका था। इसी कारण से, मुझे भारत- चीन सरकार द्वारा आयोजित सांस्कृतिक आदान-प्रदान कार्यक्रम के लिए चुना गया और मैं उन तीन चीनी छात्रों में से एक बन गया जो वर्ष 1988 में हिन्दी अध्ययन के लिए भारत गए थे। 15 अगस्त 1988 को एयर चाइना की उड़ान से थाईलैंड की राजधानी बैंकाक पहूँचा, जहाँ मुझे फ्लाइट बदलनी पड़ी, वहाँ से थाई एयरवेज़ की उड़ान से 16 अगस्त को भारत की राजधानी नई दिल्ली पहुँचा। नई दिल्ली हवाई अड्डे से बाहर निकलते ही मैंने गर्म हवा के झोंके को महसूस किया, और तब मुझे लगा कि मैं वास्तव में एक विदेशी भूमि पर हूँ, मुझे घर से दूर आने का क्षणिक वियोग भी हुआ। लेकिन शीघ्र ही मेरा सारा समय और ऊर्जा भारत में रहने और पढ़ने में ख़र्च होने लगा, भारत में रहने आनन्द मैंने 15 मई 1990 को पेइचिंग लौटने तक लिया, जो मेरे लिए अविस्मरणीय है।

मैं अपने भारत में अध्ययन जीवन को तीन भागों में बाँट सकता हूँ, पहला दिल्ली का केन्द्रीय हिन्दी संस्थान जहाँ मैंने कक्षायी शिक्षा ली, दूसरा भारतीय सांस्कृतिक परिषद् (ICCR) द्वारा समय-समय पर दिल्ली के बाहर अध्ययन यात्रा पर ले जाना, तीसरा मेरा दैनिक स्वध्याय। कक्षाई शिक्षा का अपना विशेष महत्त्व है, कक्षा में हम हिन्दी भाषा- साहित्य, व्याकरण के साथ-साथ संस्कृत भी पढ़ते थे। चूँकि मैं अपने देश में तीन वर्ष हिन्दी पढ़ चुका था, इसलिए कक्षा में मेरा प्रदर्शन हमेशा सर्वश्रेष्ठ रहता था, केंद्रीय हिन्दी संस्थान में कोई भी कार्यक्रम होता था तो मंच संचालन का दायित्व मुझे मिलता था, जो मुझे और बेहतर अध्ययन करने को प्रेरित करता था।

केंद्रीय हिन्दी संस्थान की दिल्ली शाखा अपेक्षाकृत छोटी थी। शिक्षकों एवं विद्यार्थियों की संख्या भी अधिक नहीं थी। यह एक छोटे संयुक्त राष्ट्र की तरह था, जहाँ विश्व के कोने-कोने से विद्यार्थी आते थे। विद्यार्थियों को चार कक्षाओं में बाँटा गया था। कक्षा के बाद हम सभी इकट्ठे होते थे, हास- परिहास करते थे, और बहुत ही आनंदमय समय व्यतीत करते थे। उस समय वहाँ

पर एक चाय वाले बाबा थे जो बहुत अच्छी चाय बनाते थे, हम सभी उन्हें प्यार से बाबा बुलाते थे। कक्षा के समय जब हमें चाय पीने की इच्छा होती थी तो हम आवाज़ लगाते थे, "बाबा ! एक चाय।" वे तुरंत जवाब देते, "आया।" अब भी जब उस समय के बारे में सोचता हूँ तो मन रोमांचित हो उठता हूँ। चाय वाले बाबा मेरी स्मृति के अभिन्न अंग बने हुए हैं। हिन्दी संस्थान के हमारे सभी शिक्षक बहुत ही अच्छे थे। दो शिक्षकों की सुनहरी यादें अभी भी मनोमस्तिष्क में ताज़ा हैं। एक शारदा जी थी और एक थे चन्द्रमा जी, दोनों बहुत ही मनोयोग से पढ़ाते थे। उनके पास ज्ञान का अथाह सागर था, उच्चारण बहुत ही शुद्ध था। संस्थान के निदेशक थे प्रो. चतुर्वेदी, वे बहुत ही मिलनसार व्यक्ति थे। अपनी बेटी की शादी में उन्होंने हम सभी विदेशी विद्यार्थियों को अपने घर आमंत्रित किया था, किसी पारम्परिक भारतीय शादी में शामिल होने का वह मेरा पहला अवसर था, जो आज भी मेरे यादों में पूरी तरह रचा बसा है।

प्रो. चतुर्वेदी बहुत ही मित्रवत् व्यवहार करते थे, चूँकि मेरे अंक हमेशा अच्छे आते थे इस कारण उनकी मुझ पर विशेष कृपा रहती थी। अक्सर उनसे तर्क-वितर्क करता था, उनसे मैंने बहुत कुछ सीखा। प्रो. प्रमोद मेरे शोध निदेशक थे, जो उस समय बहुत ही युवा थे, साथ ही बहुत ज़िम्मेदार शिक्षक थे। उनके निर्देशन में मैंने अपना शोध पत्र पूरा किया जिसका शीर्षक था- "छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद एवं उनका खंड काव्य 'आँसू'।" शोध क्रम में मुझे उनका पूरा मार्गदर्शन मिला। प्रमोद जी अक्सर मुझे अपने मोटरसाइकिल पर बैठा कर हिन्दी के प्रसिद्ध कवियों एवं लेखकों से मिलाने ले जाते थे, जिनमें नरेन्द्र कोहली एवं नामवर सिंह प्रमुख थे। हिन्दी के क्षेत्र में इन सभी का बड़ा नाम था। उन सभी गुरुजनों का मुझपर गहरा प्रभाव पड़ा। मेरे हिन्दी के अकादमिक क्षेत्र में वे सब मेरे प्रेरकों में से एक हैं।

भारत में अध्ययन की अवधि में मैं अक्सर ICCR (भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्) द्वारा आयोजित study trip में भाग लेता था। साथ ही अकेले भी यात्रा करता था। भारत के विभिन्न स्थानों का भ्रमण किया। यात्राओं के माध्यम से मुझमें हिन्दी और भारत के बारे में गहरी समझ विकसित हुई। मैंने अनुभव किया कि भारत में कई प्रकार की सुंदरता है, विभिन्न क्षेत्रों का अपना-अलग सौन्दर्य है। उत्तर में गंगा का सुरम्य मैदान है तो दक्षिण में दक्कन का विशाल पठार, दक्षिण-पश्चिम में गोवा का तट है, तो दक्षिण–पूर्व में पुदुच्चेरी का समुद्र तट, राजस्थान के रेगिस्तान के ऊँट तो मध्य प्रदेश के राष्ट्रीय वन उद्यान के बाघ। ये सभी दृश्य बहुत ही सुंदर हैं, जो भारत को प्राकृतिक दृष्टि से अनुपम बनाते हैं। भारत की संस्कृति विविधता से भरी है, खाद्य और पेय पदार्थों की विस्तृत श्रृंखला है। यह भी कह सकते हैं कि अंतहीन श्रृंखला है, जिसका स्वाद भारत ही नहीं पूरा विश्व चखता है।

मैं यहाँ एक घटना विशेष रूप से उल्लिखित करना चाहता हूँ। एक बार इंडिया गेट के पास मैंने एक बुज़ुर्ग महिला को हाथ में मूंगफली लिए हुए घास पर बैठे देखा। वह अपने हाथों से एक गिलहरी को मूंगफली खिला रही थी। चारों ओर हरी-हरी घासें, शांत पेड़, गिलहरी उछलकूद कर रही थी। महिला बहुत प्रसन्न थी, ये सभी मिलके एक बहुत ही रमणीय और अद्भुत दृश्य बना रहे थे, जो बहुत ही लुभावना था। मानव और प्रकृति का वह संगम अकथनीय था। प्रकृति और मानव के मध्य यह सामंजस्य ही भारत को एक सहिष्णु समाज वाला देश बनाता है। इस प्रकार मुझमें धीरे-धीरे भारत और भारतीय संस्कृति की बहुत ही गहरी समझ विकसित हो गई थी। भारत प्रवास के समय मैंने अनुभव किया कि वास्तव में भारत एक बहुत ही महान् देश है। दिसंबर 1989 का दिन मेरे लिए अविस्मरणीय है, जब भारत के तत्कालीन प्रधान मंत्री राजीव गांधी जी ने अपनी चीन यात्रा की पूर्व संध्या पर मुझे आमंत्रित किया और मुझे उनसे मिलने सुअवसर प्राप्त हुआ। वे राष्ट्रीय स्तर के पहले नेता थे जिनसे मैं मिला था। वह बहुत ही मिलनसार थे और चीन की पीली नदी, चीन की महान् दीवार और महान् बौद्ध भिक्षु ह्वेनसांग के बारे में गहरी समझ रखते थे। उन्होंने मुझे अच्छे से हिन्दी सीखने और भविष्य में चीन और भारत के मध्य मैत्री संबंध को प्रगाढ़ करने में योगदान देने के लिए प्रेरित किया। कालांतर में मुझे राष्ट्रपति भवन में आमंत्रित किया गया, जहाँ मैं भारत के तत्कालीन उपराष्ट्रपति और बाद में राष्ट्रपति का पद सँभालने वाले महामहिम डॉ. शंकर दयाल शर्मा से मिलने का अवसर मिला, अपने एक मित्र के विवाह में तत्कालीन रक्षा मंत्री और बाद में प्रधानमंत्री बनने वाले पीवी नरसिम्हा राव सहित अन्य प्रसिद्ध राजनीतिक हस्तियों से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ। वे सभी मेरे प्रति बहुत ही मित्रवत् थे, उन्हें यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुई कि मैं भारत में हिन्दी का अध्ययन करने वाला एक चीनी छात्र हूँ। मुझे यह सोचकर बहुत प्रसन्नता हुई कि भारत–चीन मैत्री संबंध को हिन्दी के सहयोग की आवश्यकता है।

चीन वापस लौटने के बाद, मैंने विभिन्न अवसरों पर चीन यात्रा पर आए भारतीय राष्ट्रपति रामास्वामी वेंकटरमन, कोचेरिल रमन नारायणन, अब्दुल पाकिर जैनुलाबदीन अब्दुल कलाम, प्रतिभा पाटिल, प्रधान मंत्री अटल बिहारी वाजपेयी, मनमोहन सिंह, नरेंद्र मोदी तथा विदेश मंत्री सुषमा स्वराज से मिलने का अवसर मिला, ये सभी हिन्दी को बहुत महत्त्व देते थे (हैं), इन सभी से मैंने हिन्दी में ही बातचीत की, न कि अंग्रेज़ी में। इतना ही नहीं, मेरा चीन में कई भारतीय राजदूतों और सलाहकारों से मित्रवत् संबंध बना, कई अन्य भारतीय मित्र भी बने, वे सभी इस बात से सहमत (थे) हैं कि चीन-भारत संबंधों में भाषा एक अपूरणीय भूमिका निभाती है। मुझे लगता है कि हिन्दी सीखने और हिन्दी के क्षेत्र में काम करने के मेरे संकल्प के पीछे यही प्रेरणाएँ हैं।

भारत से वापस चीन आने के बाद मैंने हिन्दी भाषा व साहित्य का अध्ययन जारी रखा, चीन के प्रतिष्ठित पेइचिंग (पेकिंग) विश्वविद्यालय से मैंने हिन्दी साहित्य में स्नातकोत्तर और पीएँच.डी किया तथा चीन में हिन्दी में पीएँच.डी करने वाला पहला शोधार्थी था। मेरे पीएँच.डी शोधपत्र का विषय था "स्वतंत्रता पूर्व का हिन्दी नाटक।" मेरे शोध

पत्र को चीन और भारतीय विद्वानों द्वारा बहुत सराहा गया तथा मेरे शोध पत्र को पेइचिंग विश्वविद्यालय द्वारा "उत्कृष्ट पीएँच.डी शोध प्रबंध पुरस्कार" दिया गया।

मेरे सभी चीनी शिक्षक बहुत ही उत्कृष्ट थे, मेरे गुरुजनों में प्रो. ल्यु आन वू, प्रो. ईन होंग य्वान, प्रो. मा मंग कांग तथा प्रो. चिन तिंग हान आदि प्रमुख थे जिन्होंने पेइचिंग विश्वविद्यालय में मुझे हिन्दी भाषा व साहित्य पढ़ाया था, वे जितने विद्वान थे उससे अधिक सरल हृदय थे, उनसे मैंने बहुत कुछ सीखा है। इसके अलावा संस्कृत के महान् विद्वान प्रो. ची श्येन लिन तथा प्रो. चिन खमु का मुझपर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा, इन्होंने मुझे हिन्दी तो नहीं पढ़ाई लेकिन मैं अक्सर इनसे मिलने जाता था। प्रो. ची श्येन लिन से रामायण पर चर्चा होती थी (प्रो. ची श्येन लिन को वाल्मीकि रामायण, पंचतंत्र तथा अभिज्ञान शाकुन्तलम के संस्कृत से चीनी भाषा में अनुवाद के लिए जाना जाता है, इस भगीरथी कार्य के लिए इन्हें भारत सरकार द्वारा "पद्म भूषण" से सम्मानित किया गया है।), प्रो. चिन खमु से महाभारत पर चर्चा होती थी (महाभारत का संस्कृत से चीनी अनुवाद इनके द्वारा किया गया है)। मैं हमेशा सोचता हूँ, यदि इन सब चीनी गुरुजनों का आशीर्वाद नहीं मिला होता तो मैं आज यहाँ नहीं होता।

वर्ष 1991 से मैंने सप्ताह में एक दिन हिन्दी पढ़ाना शुरू किया, विद्यार्थियों को हिन्दी पढ़ाने का अनुभव बहुत ही सुखद रहा। 1996 में पीएँच.डी पूरी करने के बाद मैं पेइचिंग विश्वविद्यालय में हिन्दी शिक्षक बन गया और औपचारिक रूप से हिन्दी अध्यापन तथा शोध कार्य शुरू किया, विद्यार्थियों को सिखाता था और उनसे सीखता भी था, एक सुखमय जीवन जीने लगा। धीरे-धीरे, भारत पर शोध करते, आलेख लिखते एवं प्रकाशन करते करते मुझे शिक्षक के पहचान से प्रेम हो गया। इस प्रकार हिन्दी अध्यापन और हिन्दी के माध्यम से भारत का अध्ययन करना मेरी दिनचर्या हो गई, इसलिए मुझे हिन्दी भाषा व साहित्य तथा भारतीय संस्कृति से अधिक लगाव होने लगा, तथा हिन्दी एवं भारत अध्ययन को अपने जीवन का अभिन्न अंग बनाने के लिए कृतसंकल्प हो गया।

मेरे लिए हिन्दी केवल एक साधारण सी विदेशी भाषा नहीं है। हिन्दी एक जीवंत भाषा है जिसमें प्राण है; वह भारत का प्रतीक है। भारतीय सभ्यता व संस्कृति की पहचान है। वह भारतीय लोगों को समझने की कुंजी एवं खिड़की है, वह "भारत" है। इसलिए मैंने न केवल चीन में हिन्दी पढ़ाई, बल्कि चीन में हिन्दी के प्रचार-प्रसार की भी ज़िम्मेदारी ली। मेरे सतत् प्रयासों के फलस्वरूप आज चीन के 17विश्वविद्यालयों में हिन्दी की पढ़ाई हो रही है जो वर्ष 2000 के पहले एक विश्वविद्यालय में हो रही थी। हिन्दी पढ़ने वाले विद्यार्थियों की संख्या बढ़कर 400-500 हो गई है जो वर्ष 2000 के पहले की तुलना में दस गुणा अधिक है। इसके अलावा, मैंने दक्षिण एशियाई भाषा संघ, चीन की स्थापना की है जिसमें हिन्दी सबसे महत्त्वपूर्ण भाषा है। हम प्रत्येक वर्ष चीन में अकादमिक सम्मेलनों का आयोजन करते हैं, साथ ही विद्यार्थियों को हिन्दी सीखने के लिए प्रोत्साहित करने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी संभाषण एवं हिन्दी लेखन प्रतियोगिता का आयोजन करते हैं। मुझे इस बात पर गर्व है कि वर्तमान में चीनी विश्वविद्यालयों में हिन्दी पढ़ाने वाले शिक्षक या तो मेरे विद्यार्थी हैं या मेरे विद्यार्थियों के विद्यार्थी। मेरा लक्ष्य है कि चीन में कम से कम 25 विश्वविद्यालय में हिन्दी पढ़ाई जाए, और हिन्दी के विद्यार्थियों की संख्या 1000 तक पहूँच जाए। मुझे लगता है कि चीन-भारत संबंध तथा चीन-भारत मैत्री के लिए यह संख्या उपयुक्त है, अपितु यह संख्या कम है। वर्तमान में मैं हिन्दी अध्यापन एवं हिन्दी प्रचार के साथ-साथ हिन्दी पर शोध कार्य में अपना लघु योगदान दे रहा हूँ। मेरे प्रकाशित शोध कार्यों में छह प्रबंध शामिल हैं जिनमें हिन्दी साहित्य का इतिहास (सह –लेखक), हिन्दी नाट्य साहित्य, टैगोर के साहित्यिक कार्यों पर अध्ययन (सह –लेखक), आधुनिक एवं समकालीन हिन्दी साहित्य (सह –लेखक), मध्यकालीन भारतीय धार्मिक साहित्य (सह -लेखक), हिन्दीपाठ्यपुस्तक (मुख्य संपादक) तथा तीन अनुदित पुस्तकें सूरसागर (ब्रजभाषा से चीनी), भारत एवं चीन (अंग्रेज़ी से चीनी), भारत एवं चीन - एक हज़ार वर्षों का सांस्कृतिक संबंध (अंग्रेज़ी से चीनी) शामिल हैं। इसके अलावा बीस से अधिक पुस्तकों का संपादन किया है जिसमें वृहद् चीनी –हिन्दी शब्दकोष, इनसाइक्लोपीडिया ऑफ चाइना-इंडिया कल्चरल कॉन्टैक्ट्स, 80 से अधिक अकादमिक शोध पत्र प्रकाशित किया है जिनमें " तुलसीदास एवं उनका आदर्श समाज", "सूरदास एवं उनका साहित्य ", "भारतीय धर्मों का अवधिकरण ", "भारतीय शास्त्रों का चीनी अनुवाद – इतिहास, वर्तमान एवं संभावनाएँ " आदि।

उपरोक्त उपलब्धियों को देखते हुए मुझे कई पुरस्कार भी मिले हैं, जैसे 8वें विश्व हिन्दी सम्मेलन में "अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी पुरस्कार", चीन के भारतीय दूतावास द्वारा "हिन्दी योगदान पुरस्कार", केंद्रीय हिन्दी संस्थान द्वारा "डॉ. जॉर्ज ग्रियर्सन पुरस्कार", मध्य प्रदेश सरकार द्वारा "फादर कामिल बुल्के पुरस्कार", साहित्य अकादमी द्वारा "आनंद कुमारस्वामी फेलोशिप", सामाजिक विज्ञान और मानविकी में उत्कृष्ट शोध के लिए पेकिंग विश्वविद्यालय द्वारा "उत्कृष्ट डॉक्टरेट शोध प्रबंध पुरस्कार" आदि शामिल है। ये पुरस्कार वस्तुत: चीन में हिन्दी का सम्मान है, जो मुझे चीन में हिन्दी के प्रचार –प्रसार के लिए प्रेरणा देते हैं।

वर्तमान में, मैं पेइचिंग विश्वविद्यालय के दक्षिण एशियाई अध्ययन केंद्र के निदेशक के रूप में हिन्दी अध्यापन कर रहा हूँ। "हिन्दी साहित्य", "भारतीय संस्कृति", "भारतीय इतिहास" और "भारतीय धर्म" " आधुनिक भारतीय साहित्य", "भारतीय धर्म" और "दक्षिण एशियाई संस्कृति" आदि क्षेत्र में शोध कार्य में लगा हुआ हूँ। मुझे हिन्दी पसंद है, मुझे भारतीय संस्कृति पसंद है, मैंने अपना पूरा जीवन हिन्दी के अध्यापन एवं भारत पर अध्ययन करने के लिए समर्पित कर दिया है। आशा करता हूँ कि भविष्य में चीन में हिन्दी और पुष्पित पल्लवित होगी।

000

कविताएँ

प्रमोद त्रिवेदी की कविताएँ

विदूषक

विदूषक 1

दरबार में ज़रूरत नहीं
अब विदूषक की।
गंभीरता से लिया जाता है-
उसका कथन
राजा के कथन पर हँसते हैं
दरबारी
कह रहे- मुकर्रर-मुकर्रर
000

विदूषक 2

यह करिश्मा ही कहा जाएगा कि-
राजा मसखरा सिद्ध हुआ
और मसखरा पा गया-
ज़िम्मेदार हैसियत।
विदूषक की
जय जयकार करती भीड़,
पागल हो रही थी।
राजा की आवाज़
हो गई थी- बेअसर।
निज़ाम बदल गया था।
जनता की उम्मीदें
विदूषक पर टिकी थीं।
000

विदूषक 3

राजा के साथ धोखा हुआ।
अतिविश्वास में खो दी
उसने
अपनी हैसियत।

राजा हर तरह से-
अकेला!
अशक्त!
निरीह!
उपेक्षित

महत्त्वहीन मानकर
मान लिया गया था।
जिसे,
हँसी का पात्र
उसी ने दिखाई
सब को
उनकी औक़ात!

अब विदूषक ही
सर्व मान्य
सर्व मान्य,
सर्व स्वीकृत,
निरंकुश।
हर चुनौतियों से परे-
जन-गण-मन- अधिनायक!
000

विदूषक 4

विदूषक करता है अब गंभीर बातें
दरबारी भी लेते हैं
गंभीरता से,
उसका कहा।

माहौल बदल गया
सबको नज़र आता है सुरक्षित
अपना भविष्य।
विदूषक के पक्ष में गढ़े जा रहे हैं।
आकर्षक नारे!

विदूषक का कद
अचानक बढ़ गया।
राजा, चिन्तित।
000

विदूषक 5

राजा का भविष्य तय हो गया।
वह विदूषक की भूषा में उपस्थित
दरबार में।

उसने गढ़ा एक हास्य-प्रसंग
दरबारी आदतन बोले-
मुकर्रर-मुकर्रर।
विदूषक ने सुनी
ख़तरे की घंटी

राजा ने कहा-
सब अपनी हैसियत में रहें
सपने देखना अपराध माना जाएगा।
जनता ने विदूषक का साथ दिया।
राजा के बुरे दिन शुरू हो गए।
विदूषक का निज़ाम मज़बूत हुआ।
000

प्रमोद त्रिवेदी
मन्वन्तर, 205, सेठी नगर,
उज्जैन
मप्र-456010
मोबाइल- 9755160197

नरेंद्र नागदेव की कविताएँ

अपनी शर्तों पर

मुझे यकीन है कि अगर
उस पहले मोड़ पर
मैंने हाँ कर दी होती
तो जो जहाज़
सोना लाद कर लाया था
मेसेपोटेमिया से
उसमें मेरा भी हिस्सा होता
उस दूसरे मोड़ पर
मैंने न कर दी होती
तो मैं बच जाता
बरमूडा ट्रेंगल में
ग़ायब हो जाने से
उस तीसरे मोड़ पर
हाँ कर देता
तो मेरे मरने की
अफवाह मात्र से
झंडे झुक जाते
सरकारी इमारतों पर
उस चौथे मोड़ पर
न कर देता
तो जीतकर निकलता
कड़कड़डूमा की अदालत से

हरेक हाँ की जगह न
और हरेक न की जगह हाँ
करते-करते
जी गई ज़िंदगी अंतत:
जा कर ढह जाती है
नाकामी और विस्मृति की बाँह में
जैसे
सोमाली के समुद्री लुटेरों द्वारा
लूटा गया कोई उजाड़
बदरंग जहाज़
लौटा हो बंदरगाह में

हो या नहीं हो तुम स्वयं अपनी इस
हालत के लिए जवाबदार
पूछता है वक़्त मुझसे
मुझे गुनहगार
घोषित करते हुए

जवाबदारी तो सिर आँखों पर
लेकिन
मुझे आप नहीं देखेंगे
एक असफल ज़िंदगी की शर्म में
डूब मरते हुए

मैं जानता हूँ कि अपनी
शर्तों पर जीने वाले
ऐसे ही फ़ैसले लेते हैं
हर निर्णायक मोड़
और राह में
जो दुनिया की नज़र में
हाँ की जगह न होते हैं
और न की जगह हाँ
और
जिनके अंत में
उनका
लुटा हुआ जहाज़
लंगर डालता है
बन्दर गाह में
000

अनधिकृत प्रवेश

मैं अपने अँधेरों में भटकता हुए
एक दिन
एक जगह पहुँचूँगा
जहाँ एक बोर्ड पर
चेतावनी लिखी होगी
कि आगे सूर्यकिरण, धूप
और उजास का इलाका है
अनधिकृत प्रवेश वर्जित है
मैं अपनी घुटन से घबरा कर
एक दिन
एक जगह पहुँचूँगा
जहाँ एक बोर्ड पर
चेतावनी लिखी होगी
कि आगे चंदन वन से
बह कर आती सुगंधित हवाओं का
संरक्षित इलाका है
अनधिकृत प्रवेश
दंडनीय अपराध है

मैं जल की एक बूँद की
खोज में
सूखे कंठ के साथ तड़पता
एक दिन
एक जगह पहुँचूँगा
जहाँ एक बोर्ड पर
चेतावनी लिखी होगी
कि आगे आषाढ़ सावन के मेघ
अनवरत बरस रहे हैं
अनधिकृत प्रवेश की चेष्टा नहीं करें

कहीं भी नहीं
मैं तो सिर्फ
उनकी दुनिया के किनारे
पहुँचूँगा
भटकता हुआ
जिन्हें यक़ीन है
कि दुनिया उन्हीं की है
वहाँ भी एक बोर्ड पर
चेतावनी लिखी होगी
कि यहाँ से प्रारम्भ होता है
आदमखोरों का इलाका
कृपया
अपनी जवाबदारी पर ही
प्रवेश करें
000

नरेंद्र नागदेव
B-2/2376, वसंत कुञ्ज, नई दिल्ली - 110070
मोबाइल- 9873498873
ईमेल- nknagdeve@gmail.com

नंदा पाण्डेय की कविताएँ

अलविदा

पर्वत सी देह
कटार सी आँखें
वीभत्स हँसी और
उत्तेजना का अंगराग
उसे अलंकृत करने के लिए
इतना काफी था

पहले एक -दूसरे के सम्मान में
गीत गाये गए
फिर नाच की धुन शुरू हुई

जब आनंद का दरिया बह निकला और
नाचते-नाचते
उसकी आँखों में
नमी आ गई,तो
वह पहले से भी बढ़िया नाचने लगी

प्रेम के पंखों की मृदुल उड़ान
के साथ-साथ
धूप का खिलना और बर्फ का पिघलना
सब कुछ अद्भुत था

जब वह नाच-नाच कर थक गई
तो रुख़सत का आख़िरी गाना गाकर
इस तमाशे को ख़त्म करने का
निश्चय कर लिया

और पीछे छोड़ कर गई
सम्पूर्ण आत्मसमर्पण का भाव
छोड़ गई, तीव्रता से जलती
प्रेमाग्नि की शांत कौंध
छोड़ गई, शांत-गंभीर वातावरण में
चिरशांति के महाशब्द.....
अलविदा ...!!!
000

अगहन की शाम

अगहन की उस धुंध भरी शाम के बाद
फिर न जाने कितनी शामें
भीड़ के बीच और भीड़ से दूर
अँधेरी और चाँदनी में
डूबी हुई शामें

ख़्वाबों की नदियों में
कागज़ की कश्तियों पर सवार शामें
वे नज़दीक और नज़दीक होते गए
दोनों जितने नज़दीक हुए
उतने ही चर्चित भी हुए
फिर शुरू हुई
अनगिनत कविताएँ

वह लिखती रही
वक़्त बीतता गया और अपनी यादें छोड़ता
गया

एक शाम, जब
तन्मयता के गहरे क्षण में
उसकी आत्मा शरीर के बंधन से स्वतंत्र
होकर विचर रही थी
कि तभी
दूर से आती हुई आवाज़
उसके कानों से टकराई
जागते रहो......

उसी शाम बीच उन दोनों के
मनोमालिन्य के दीवार की
पहली ईंट रखी जा चुकी थी

बिना कुछ सोचे-समझे
उसने तीव्रता से अपनी कविताओं को ख़ुद
में समेट कर सचेत हो गई

किन्तु, उन कविताओं से जुड़ी
अनगिनत प्रेम कहानियाँ
आज भी आकाश में टँगी
अपने दुखांत पर रो रही है

अब शाम के होंठों पर
अँधेरा अपनी हथेलियाँ रख चुका था....!!!
000

पीठ का फोड़ा

सुनो! अब लौटने का कारण मत पूछना
सबके अलग-अलग सिद्धांत होते हैं
तो जाहिर है मेरा भी होगा

अपने आप से क्षमा याचना
अब बहुत मुश्किल नहीं होगा
पहले भी कई बार कर चुकी हूँ

मुझमें जितनी समझ है
उस के आधार पर कह सकती हूँ कि, कोई
भी रचयिता भोला-भाला हो ही नहीं सकता
मैं भी नहीं हूँ....!

शायद मेरी बातें निरर्थक लगे
अटकलें भी लगाई जाएँ
पर, मैं अनजान ही रहना चाहूँगी

इसे अपनी विलक्षणता कहूँ या कि
कारनामा कहूँ
कि, अपना कलेजा ख़ुद ही फाड़ कर,
ख़ुद ही सिल लिया है...मैंने

और, मेरी पीठ का वह फोड़ा
जो, किसी करवट चैन नहीं लेने दे रहा था
आज वह अपने-आप फूट गया...!
000

नंदा पाण्डेय
फ्लैट नंबर 2 बी, सूरज अपार्टमेंट हरिहर
सिंह रोड मोरहाबादी रांची, झारखंड।
पिन- 834008
मोबाइल- 7903507471
ईमेल- nandapandey002@gmail.com

रेनू यादव की कविताएँ

बजट और रोटी

हलक़ में अटक गई है रोटी
चढ़ गई सुरहुरी
धीरे-धीरे
गर्दन सहलाते
समय खखोरा जाती है
पूरी नली
उगलने से नहीं निकलती रोटी
निकलता है खून
खून-खून नहीं पानी है
बह रहा है नालों में
नालों में अब पसीने
कीड़े के भाव पर हैं बिकते
सातवें माले से झाँकती
चक-मक पत्थरों की आँखें,
चौंधियाँ जाती हैं
नग्न गंधीले पसीनों को देख
मुँह बिचका कर
छिपा लेती हैं काले चश्मों से
और देखने
लगती हैं सुनहरा आसमान
हलक़ में अटकी रोटी
साथ-साथ घूम रही है
घर, ऑफ़िस, बाज़ार

ऊपर की साँस ऊपर
नीचे की साँस नीचे
जैसे अटक गया हो संसार
आम से बनना था ख़ास
पर मुँह खोलते ही
निकलती है आग
भरे बाज़ार में
पता नहीं कब किसके धक्के से
गले में अटकी रोटी
आँखों से दिखाई देने लगी
जैसे पेट में पहुँचने से पहले ही
हलक में उँगली डाल
किसी ने निकाल ली हो
या ख़ुद ही कल्पना कर ली
पेट में पहुँचती रोटी के सफ़र को
या आँखों में
कई-कई आँखें उग आई हों
साँसें रोक, आँखें पोंछ
उम्मीद बाँध हिम्मत के साथ
फिर से देखा आसमान
सचमुच
रोटी आसमान से ही
फेंकी गई थी और
इक्कीसवीं माले पर थाम ली गई
या शायद रोटी उन्हीं के लिए थी
इक्कीसवीं माले से नीचे
आने की उम्मीद से
सबके हलक़ में
अटक गई रोटी।
000

वसंत पंचमी के दिन पाँच बच्चों की माँ

भिनभिनाती मक्खियों के बीच
बैठी है झुराई लकड़ी पर
ऐठाई लकड़ी की तरह
पाँच बच्चों की माँ
धड़धड़ाते सीने पर हाथ रख
सुतुही-सी आँखों से देख रही है
सरस्वती मंदिर में
सरस्वती-वीणा को,
जिसके तार टूट चुके हैं
और अपने जर-जर
हाथों पर किसी तरह टिका रखा है
सरस्वती ने
सरस्वती माँ के बगल में
रखी पथरीली किताबों
के अक्षर धुँधला गए हैं
या धुँधला गई हैं आँखें
या बढ़ती फीस से धुआँ
गए हैं सपने
या अक्षरों से भरे कागज़ के जहाज़
अटक गए हैं किसी पेड़ पर
जहाँ तक पहुँच नहीं सकती
पाँच बच्चों की माँ
फैक्ट्री से घर लौटते हुए
सांप्रदायिक दंगे में
बड़े बेटे के कटे हाथ
काट दिए हैं रोटी के आसरे
मँझला बड़े को बचाने निकला
और वहीं का होकर रह गया
तीसरा बेटा अक्षर से अक्षर
जोड़ 'सपनों का भारत'
के निर्माण में राजद्रोह का
आरोपी बन गुम हो गया जेल में
चौथे की आँखें अपंग हो चुकी हैं
सपने बुनने से पहले ही
और पाँचवें को सपना
पता ही नहीं
वह मालपूए की ज़िद्द
में सुबह से फेंक रहा है
खाली बर्तन
मालपुआ भी एक सपना है
पाँच बच्चों की माँ के लिए
माँ बदहवास दहक
रही है रोज़ी और रोटी के बीच
और पाँचवा बेटा मालपूए की चाह में
सरस्वती मंदिर के सामने
थूक से अपने हाथों को चाट कर
आते-जाते लोगों के
सामने बेहिचक
पसारे बैठा है।
पाँच बच्चों की माँ की
निगाहें कड़ुआ गई हैं
सरस्वती की तरह
000

रेनू यादव
भारतीय भाषा एवं साहित्य विभाग,
गौतम बुद्ध विश्वविद्यालय, यमुना
एक्सप्रेस-वे,
ग्रेटर नोएडा- 201312 (उ.प्र.)
ईमेल- renuyadav0584@gmail.com

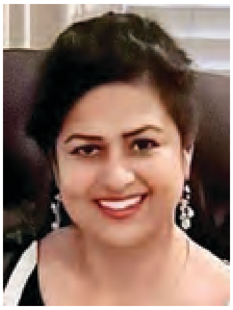

गीता घिलोरिया की कविताएँ

इत्तिफ़ाक़न ...

इत्तेफाक़ की बात है
आज उसने भी वही पढ़ा जो मैंने लिखा ...
सम्भवत: मेरी कुछ ख़ामोशियों ने
उन कानों तक ज़ोर लगाया हो ... !!
ख़ामोशियाँ सरक गईं उस ओर...
ख़ामोशियाँ ठहर गईं उस छोर ...
ख़ामोशियाँ बतियाने लगीं
ताबड़तोड़ ...
लगा कि
ख़ामोशियाँ बोलती ही नहीं,
चीखती भी हैं....कभी-कभी... !!
लगा कि
ख़ामोशियाँ ख़ामोश क्यूँ नहीं रहतीं...
लड़ती क्यूँ हैं....
कभी कभी ...!!
फिर वही कहा सुनी,
फिर उन्हीं दोषों का दौर चला...!
उसकी ख़ामोशी
मेरी ख़ामोशी को कोसने लगी !
मेरी ख़ामोशी
उसकी ख़ामोशी को टोकने लगी !
ख़ामोशियाँ शांत ही भली थीं ...
ख़ामोशियों में कई बातें टली थीं ...
इत्तिफ़ाक़न बात बनी भी नहीं,
और बिगड़ी भी नहीं...
इत्तिफ़ाक़न आँखें झुकी भी नहीं,
और मिली भी नहीं...
इत्तिफ़ाक़न दिन ढल भी गया,
और रात हुई भी नहीं ...
सम्भवत: मेरी कुछ ख़ामोशियों ने
उसकी कुछ ख़ामोशियों से
सुलह कर ली हो ...
उसकी ख़ामोशी रह गई उस छोर...
मेरी ख़ामोशी सिमट आई इस ओर ...
इत्तिफाक़ ही रहा
वो आया भी नहीं, और चला भी गया
......!
इत्तेफाक़ की बात है
आज उसने भी वही पढ़ा जो मैंने लिखा ...!
000

ऐतबार

मुझसे मिलो
मैं ऐतबार हूँ।
कभी याद करो मुझे
या कभी आज़माओ मुझे
मैं जीता हूँ तुम में
रोज़ नए बहाने से
बुलाओ मुझे।
मुझसे मिलो
मैं ऐतबार हूँ।

कभी नज़र में लाओ मुझे
या कभी पूछो सवाल मुझसे
मैं बना हूँ तुम्हारे लिए
तुम भी रोज़
अपना बनाओ मुझे
मुझसे मिलो
मैं ऐतबार हूँ।

भारी गले पे जब भी
दो आँखें डबडबाएँ
बंद ज़बाँ से पुकारो मुझे
आहट का आदी नहीं मैं
लौ सा भभकता
अपने ज़हन में पाओ मुझे
मुझसे मिलो
मैं ऐतबार हूँ।

हाँ
मैं ऐतबार हूँ तुम्हारा
मुझ से मिला करो!
000

तुम मिलो तो सही

तुम मिलो तो सही
तुम्हें आपबीती सुनानी है
तुम बस मिलो तो सही

कई बार हाथ जले हैं
कभी ज़बाँ जली है
तुम मिलो तो सही
तुम्हें कई चोटें दिखलानी हैं
तुम मिलो तो सही

चुप्पी का सिलसिला
वो आँसुओं क़ा सैलाब
तुम मिलो तो सही
तुम्हें गीली हथेलियाँ पकड़ानी है
तुम मिलो तो सही

कई बचपन देख लिए
अब उनमें ख़ुद को देखती हूँ
तुम मिलो तो सही
तुम्हें चुलबुली बातें बतानी हैं
तुम मिलो तो सही

याद कब-कब आती है
या याद कब नहीं आती
तुम मिलो तो सही
तुम्हें जलीकटी सुनानी है
तुम मिलो तो सही

अब क्या बचा है
जो काम आए तुम्हारे
तुम मिलो तो सही
तुम्हें अव्यस्थित यादें लौटानी है।
तुम मिलो तो सही
तुम बस मिलो तो सही।
000

गीता घिलोरिया
9115 अनब्राइडल लेन, वेक्सह, नॉर्थ
कैरोलाइना- 28173
मोबाइल- 408-624-7696
ईमेल- fine.art.gita@gmail.com

केशव शरण की कविताएँ

यात्रा

अनेक सहचर मिले
अनंत चला
अभी भी
पथ का अंतिम सिरा
नहीं दिख रहा,
सिर्फ़ पथ
सूना और जलता
और एक इंसान क्या
एक श्वान नहीं
जो साथ चलता !
000

बेनाम

नदी के
दो किनारों के बीच
जो रिश्ता है
उसका कोई नाम
शब्दकोश में
नहीं दिखता है

आमने-सामने की चीज़
बिना संज्ञा के
आज तक
इसलिए
तेरा-मेरा रिश्ता भी
बेनाम
जबकि
नदी का नाम
ज़िंदगी है
000

आंतरिक संकट

जनता की तकलीफ़ें
बढ़ रही हैं
उठ रहा है जनाक्रोश
उत्पन्न हो रहा है
आंतरिक संकट

लेकिन
कोई क्रांति नहीं होने जा रही
संसद के सामने।
सिर्फ़
एक छोटा-सा युद्ध होगा
सीमा पर
और झटपट
समाप्त हो जाएगा
आंतरिक संकट
000

कितना

कितना बड़ा है
कि फटता ही जा रहा है हृदय
जैसे-जैसे
बीतता जा रहा है समय
जुलाई सन् तिरासी से

कितना बेधक
और कड़ा है अनुभव
वहीं
कितना नरम था विषय
ढाई आखर में समाया !
000

मुआवज़ा

शकुन्तला नहाने गई थी
जहाँ नदी में
उसकी अँगूठी गिरी
और अँगूठी के बिना
दुष्यंत ने
उसे पहचानने से इंकार कर दिया
वह शकुन्तला दूसरी थी
यह शकुन्तला दूसरी है
यह बहुमंज़िली आग में घिरी
आग में जलकर
काला पड़ गया
उसका कंचन बदन
लेकिन
वह पहचानी गई
अपनी सगाई की अँगूठी से
और पहचानने वाला
दुष्यंत यह दूसरा है
जिसका चेहरा
आँसुओं से भरा है

इस शकुन्तला के
जीवन का मुआवज़ा
क्या हो सकता है
इस दुष्यंत के प्यार का ?
000

बिना इसके नहीं गति

मुझे ही
ख़ुद को
बहलाना है
मुझे ही
ख़ुद को हँसाना है
और यह
मैं कर लूँगा
करता आया हूँ
बिना इसके नहीं गति

मेरी नापसंदगी
मेरी नाराज़गी
दुनिया के प्रति
मुझे परेशान कर रही है अति
000

केशव शरण
एस 2/564 सिकरौल, वाराणसी 221002
उप्र
मोबाइल- 9415295137
ईमेल- keshavsharan564@gmail.com

गीत

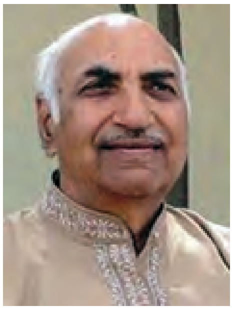

डॉ.मनोहर अभय के गीत

सुना तुमने !

सुना तुमने !
मौसम की मुठ्ठियों में

खुशबू नहीं तेज़ धारवाली कटारियाँ हैं
छाँट रहा बेदर्दी से फूलों की गर्दनें
सुना तुमने !

छिल गया है चन्द्रमा का तन- बदन
दहकन दे रहा शीतल पवन
धरती माँगती दो बूँद पानी
सूरज पी गया सारी नमी
सुना तुमने !

संगीन की नोक पर
नाचती पनियर घटाएँ
मृत्यु के भुजपाश में फफकती
चारों दिशाएँ
देखते प्रगतिधर्मी
जल रहा भूगोल
सुना तुमने !

रख गया है तोड़ कर
पुख्ता किवाड़ें, खिड़कियाँ
बेदर्द मौसम दे रहा
गंधल पवन को झिड़कियाँ
कड़कती बिजलियों से
ख़ास रिश्ता है
सुना तुमने !
000

मरघट नहीं

मरघट नहीं
रंगीनियों का शहर है
भुने जा रहे आदमी
हैं भभकती भट्टियाँ।

फूल थे नापैद
फूल से बच्चे जले
खाक होकर रह गए
छज्जों पर धरे गमले
चक्कर लगाती मौत
हैं कसमसाती मुठ्ठियाँ।

पत्तियों सी झरी
ऊँची खड़ी अट्टालिका
बीच रस्ते में फँसी
स्कूल जाती बालिका
माँगते हैं पाँव घायल
धुली मरहम- पट्टियाँ।

नंगे बदन से जल रहे
खेत औ' खलिहान हैं
रेत की नदियाँ दहकतीं
नहरें हुई श्मशान हैं
चिड़िया- चिरौटे चुग गए
पकी- अधपकी भुट्टियाँ।

बगीचे हुए बागी
करती बग़ावत केतकी
नारे लगाती धूप है
सूर्य से होकर दुखी

प्रतिरोध के आयुध माँग बैठे छुट्टियाँ।

निर्वसन हैं पेड़ सारे
एक भी पत्ती नहीं
सिर खपाने को कहीं
छत्ती- दुछत्ती नहीं

फट रहे ज्वालामुखी
आग पीती --छोटी बड़ी हट्टियाँ।
000

मुठ्ठियों में थाम लो

मुठ्ठियों में थाम लो
मधुमती नाज़ुक हवाएँ
वरना लौट जाएँगी।

धन्य मानों आ गईं
चंदन वनों की गंध लेकर
पलाश बेला मोतिया को
सुरमयी सरगम सुना कर

भर लो भुजाओं में
वरना लौट जाएँगी।

टहनी हिली गुलाब की
जूड़े सुगंधों के खुले
देखते ही रह गए
केश केसर से धुले
अपलक
नयन से देख लो
वरना लौट जाएँगी।

प्यार से दुलार लो
घिरते हुए चौमास में
बुझ सकेगी प्यास मीठी
फुहारों से भरे गिलास में
छुपा लो नयन की कोर में
वरना लौट जाएँगी।

चाँदनी के गाँव में
बिछुड़े हुए जोड़े मिले
अँगूठियाँ बदल रहे
संकोच के कंगन हिले
बाँध लो रूमाल में
वरना लौट जाएँगी।
000

मनोहर अभय
प्रधान संपादक अग्रिमान, आर.एच-111,
गोल्डमाइन, 138-145, सेक्टर - 21,
नेरुल, नवी मुम्बई - 400706
मोबाइल- 91671480961
ईमेल- manohar.abhay03@gmail.com

दोहे

जल के दोहे

डॉ.गोपाल राजगोपाल

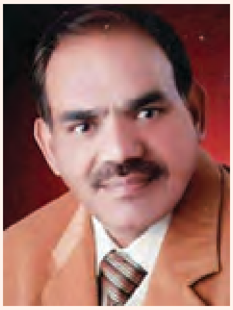

डॉ.गोपाल राजगोपाल
आचार्य,आर.एन.टी.मेडिकल
कॉलेज,उदयपुर- 313001
मोबाइल- 9414342523
ईमेल- grajgoparva@gmail.com

मत कर जल से ज़्यादती, प्राणी ज़िद को छोड़।
नदिया जब भी रूठती, लेती रस्ता मोड़।।

बहती नदिया बोल दे, तुझको किसकी खोज।
पर्वत से सागर तलक, जल ही जल में मौज।।

जब आता औकात पर, जम कर करता वार।
तट से करता है कभी, जल मीठी तकरार।।

अपने हिस्से का दिया, जल तुझको हर बार।
तू इक नगरी झील की, मैं इक मरुधर थार।।

निर्मल कर दे जो सभी, इस जीवन के तंत्र।
प्राणी तेरी आँख में, है मन-शोधक यंत्र।।

जब मनमौजी मेघ ने, दे दी थोड़ी ढील।
तन-मन पानी हो गया, लगी छलकने झील।।

जल से तन के योग का ऐसा हुआ तिलिस्म।
जितना शीतल जल पड़ा, उतना सुलगा जिस्म।।

नदियों ने जब रेत का, धारण किया लिबास।
दूरी सागर से हुई, टूटा रिश्ता ख़ास।।

सावन में सूखे रहे, लिये आँख में जान।
उन खेतों के वास्ते, मावठ भी वरदान।।

नाविक पहले जाँच ले, नाव -पाल-मस्तूल।
यहाँ हवाएँ आजकल, बहती हैं प्रतिकूल।।

लाख सहारे उम्र भर, जीवन लेते थाम।
साथी अंतिम वक़्त का, या पानी या राम।।

नाविक से उस पार ना, करना टालम-टोल।
बैठ बाद को नाव में, पहले जेब टटोल।।

मुझ नदिया की राह में, तूने रोपे पाँव।
ऐ पुल तेरा शुक्रिया, मिला शहर से गाँव।।

ट्रेक्टर-ट्राली देखकर,हुई नदी मायूस।
ले जाएगी आज फिर,बेटी को मनहूस।।

ग़ज़ल

ग़ज़लें

सुभाष पाठक 'ज़िया'

याद की धुन पे मगन है मेरे दिल का आँगन
तेरी पायल की छनक मेरी बढ़ाये धड़कन
मेरी चाहत में असर इतना तो हो मेरी जाँ
मैं तुझे आऊँ नज़र जब तू निहारे दरपन
हाथ तेरा हो मेरे हाथ में ऐसे हरपल
तेरे हाथों में है जैसे ये सुनहरा कंगन
दोस्त भी तू है तू साथी है तू मेरी दुनिया
मेरी सजनी मेरी पगली तू ही मेरी दुल्हन
प्रार्थनाओं सा है निर्मल मेरे मन का मंदिर
दीपकों सी तू है रौशन तू दुआ सी पावन
चाँद तारे भी ज़िया पाएँ सनम तुझसे ही
और तू है मेरी जाँ अपने 'ज़िया' से रौशन

000

किसी की याद किसी का ख़याल कुछ तो है
सुकून ए दिल के लिए बहरहाल कुछ तो है
सदा का तीर पहुँचता नहीं है उस दिल तक
है सीना संग कि हाथों में ढाल कुछ तो है
अधूरी नींद है या ज़ख़्म टूटे ख़्वाबों के
हमारी आँख में ये लाल लाल कुछ तो है
रक़ीब ख़ूब मुहब्बत से पेश आते हैं
हबीब चलते हैं चालों पे चाल कुछ तो है
भरोसा जिसने किया मुझपे मूंद कर आँखें
उसी के होंठो पे आया सवाल कुछ तो है
'ज़िया' वो नीम के पेड़ों के नीचे हलचल है
तू रास्ते को ज़रा देखभाल कुछ तो है

000

कभी जो शौक़ था आदत बना हुआ है वो
कि अब हमारी मुहब्बत बना हुआ है वो
ये इश्क़ शौक़ नहीं है मेरी ज़रूरत है
सो मुद्दतों से ज़रूरत बना हुआ है वो
मेरे लिए ही बना था वो रौनक़ ए महफ़िल
मेरे लिये ही तो ख़ल्वत बना हुआ है वो
उरूज पर हैं सितारे जो कामयाबी के
सबब यही है कि हिम्मत बना हुआ है वो
उस एक शख़्स की ख़ातिर बना हूँ मैं मंदिर
मेरे लिए ही तो मूरत बना हुआ है वो
'ज़िया' से बात करोगे तो जान जाओगे
कि क्यूँ हर एक की हसरत बना हुआ है वो

000

बादल के ज़ीने से चाँद ज़मीं पे उतरता है
दरिया के दरपन में शब भर ख़ूब सँवरता है
कुछ रंग बिरंगे अक्स उभरते हैं पानी में
साहिल शायद लहरों से कुछ बातें करता है
इंद्रधनुष है अम्बर पे कि उसकी परछाई है
बारिश के बाद अक्सर वो भी यूँ निखरता है
साथ अगर तुम हो तो ख़ुश होता है ये दरिया
दूर अगर तुम हो तो नाँव में पानी भरता है
ख़ूब बुलाते हैं जंगल के सुंदर पेड़ उसे
पर वो पक्षी मेरी ही शाख़ों पे ठहरता है
उस पर सारी दुनिया मरती सबको है मालूम
मालूम नहीं लेकिन कि 'ज़िया' पे वो मरता है

000

किस हँसी पर हारिए दिल किन ग़मों पर रोइए
चार दिन की ज़िंदगी है आप किसके होइए
छेड़कर बातें पुरानी फेरकर मुँह बैठे हो
ये कहाँ की रीत है हमको जगाकर सोइए
बह रही है देखिए गंगा हमारी आँख से
आइए अब आप भी अपनी ख़ताएँ धोइए
जब अँधेरे में नहीं कोई हमारे साथ तो
बोझ साये का उजाले में भला क्यूँ ढोइए
देखना है देखिये हर इक नज़ारा शौक़ से
ख़ुद नज़ारा हो न जाओ यूँ न उसमें खोइए
ख़्वाब की इस फ़स्ल में होगा इज़ाफ़ा और भी
जागती आँखों में कुछ नींदों के मोती बोइए
बाद मुद्दत के मिले हो ऐ 'ज़िया' साहब अगर
छोड़िए बोसा जबीं का अब लिपटकर रोइए

000

ख़्वाहिशों को हसरतों को तिश्नगी को मार के
गाँव मुझको देखने हैं इस नदी के पार के
दिल मेरा उम्मीद से क्यूँ कर बँधा है क्या पता
जबकि हैं आसार सारे यार से इनकार के
हमने कब चाहा कि देखें पाँव तेरे नाज़नीं
हम हैं दीवाने फ़क़त पाज़ेब की झनकार के
कुछ दिनों से फूल अक्सर चुभ रहा है आँख में
दिल ज़रा बहले कि अब क़िस्से सुनाओ ख़ार के
है अगर मुमकिन तो फिर आकर मिलो बुधवार को
मुंतज़िर हम रह न पाएँगे सुनो इतवार के
अपने ही हाथों से सर पे छाँव कर ली धूप में
पर गए कब साये में अहसान की दीवार के
वो 'ज़िया' है उससे मिलकर तुम ज़िया ही पाओगे
ख़ुशबुएँ रहती हैं दामन में सदा गुलज़ार के

000

सुभाष पाठक 'ज़िया'
ग्राम/ पोस्ट- समोहा, तहसील -करेरा,
ज़िला -शिवपुरी, मध्यप्रदेश, 473660
मोबाइल- 8878355676
ईमेल- subhashpathak817@gmail.com

रपट

ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन और शिवना प्रकाशन का साहित्य समागम

आकाश माथुर

4 जून को सीहोर के क्रिसेंट रिजॉर्ट के लीज़ो हाल में ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन और शिवना प्रकाशन का साहित्यकार सम्मान समारोह आयोजित किया गया। आयोजन में अलग-अलग विधा के बारह साहित्यकारों को सम्मानित किया गया। सम्मान समारोह में साहित्यकारों के साथ सामजसेवी और फ़िल्म जगत् के सितारे भी शामिल हुए। ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन और शिवना प्रकाशन ने 2019 और 2020 में घोषित सम्मानित साहित्यकारों को सम्मानित किया। इसके साथ ही आयोजन में कोरोना काल में उत्कृष्ट सेवाएँ देने के लिए डॉ. विजय सक्सेना को भी सम्मानित किया गया। आयोजन की घोषणा ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन और शिवना प्रकाशन की प्रबंधन समिति ने मई के पहले सप्ताह में की। इसके साथ ही समिति के लोग तैयारियों में जुट गए। कार्यक्रम में बतौर मुख्य अतिथि अभिनेता यशपाल शर्मा, आईसेक्ट के कुलाधिपति संतोष चौबे और पर्यावरणविद अमृता राय शामिल हुई।

ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन और शिवना प्रकाशन विभिन्न विधाओं के साहित्यकारों का हर साल सम्मान समारोह करता है। जिसमें राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर के साहित्यकारों को सम्मानित किया जाता है। यह आयोजन पहली बार सीहोर में आयोजित किया गया। इससे पहले ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन यह आयोजन कैनेडा और अमेरिका में आयोजित करता था। वहीं शिवना प्रकाशन भी देश के बड़े शहरों में आयोजन करता था। वर्ष 2019 में यह आयोजन संयुक्त रूप से भोपाल के राज्य संग्राहलय में आयोजित किया गया था। इस वर्ष आयोजन सीहोर के क्रिसेंट रिज़ॉर्ट के लिज़ो हाल में आयोजित किया गया। जिसमें दोनों संस्थाओं के द्वारा 2019 और 2020 के 12 साहित्यकारों के साथ कोरोना में सराहनीय कार्य करने वाले डॉ. विजय सक्सेना को सम्मानित किया गया। ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अमेरिका ने अपने प्रतिष्ठित अंतर्राष्ट्रीय कथा सम्मान तथा शिवना प्रकाशन ने अपने कथा-कविता सम्मान 2019 और 2020 पूर्व में घोषित कर दिए थे, लेकिन कोरोना की गाइडलाइन के चलते सम्मान समारोह का आयोजन नहीं किया जा सका था। किसी भी तरह की गाइडलाइन नहीं होने के कारण 4 जून को भव्यता के साथ समारोह आयोजित किया गया। ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन सम्मानों की चयन समिति ने वर्ष 2019 के सम्मानों के तहत 'ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन लाइफ़ टाइम एचीवमेंट सम्मान' हिन्दी के वरिष्ठ साहित्यकार इंग्लैंड में रहने वाले तेजेंद्र शर्मा को प्रदान किए जाने का निर्णय लिया गया था। वहीं 'ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अंतर्राष्ट्रीय कथा सम्मान' उपन्यास विधा में वरिष्ठ साहित्यकार रणेंद्र को राजकमल प्रकाशन से प्रकाशित उनके उपन्यास 'गूँगी रुलाई का कोरस' के लिए तथा कथेतर विधा में उमेश पंत को सार्थक प्रकाशन से प्रकाशित उनके यात्रा संस्मरण 'दूर, दुर्गम, दुरुस्त' के लिए प्रदान किए जाने का निर्णय लिया था। वहीं २०१९ के सम्मान समारोह के तहत 'ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन लाइफ़ टाइम एचीवमेंट सम्मान' हिन्दी की वरिष्ठ साहित्यकार ममता कालिया को प्रदान किया गया। उपन्यास विधा में वरिष्ठ साहित्यकार पद्‌मश्री उषाकिरण ख़ान को वाणी प्रकाशन से प्रकाशित उनके उपन्यास 'अगनहिंडोला' के लिए तथा कहानी विधा में प्रवासी कहानीकार अनिलप्रभा कुमार को भावना प्रकाशन से प्रकाशित उनके कहानी संग्रह 'कतार से कटा घर' के तहत प्रदान किया गया। इसी तरह वर्ष 2020 के तहत 'अंतर्राष्ट्रीय शिवना कथा सम्मान' हिन्दी की चर्चित लेखिका लक्ष्मी

आकाश माथुर
152, राम मंदिर के पास, क़स्बा, ज़िला सीहोर, मप्र 466001
मोबाइल- 9200004206
ईमेल- akash.mathur77@gmail.com

शर्मा को शिवना प्रकाशन से प्रकाशित उनके उपन्यास 'स्वर्ग का अंतिम उतार' के लिए, 'अंतर्राष्ट्रीय शिवना कविता सम्मान' महत्त्वपूर्ण शायर इरशाद ख़ान सिकंदर को राजपाल एण्ड संस से प्रकाशित उनके ग़ज़ल संग्रह 'आँसुओं का तर्जुमा' के लिए प्रदान किया गया। 'शिवना अंतर्राष्ट्रीय कृति सम्मान' शिवना प्रकाशन से प्रकाशित पुस्तक 'सांची दानं' के लिए मोतीलाल आलमचन्द्र को प्रदान किया गया। वर्ष 2019 के तहत 'अंतर्राष्ट्रीय शिवना कथा सम्मान' हिन्दी की चर्चित लेखिका प्रज्ञा को लोकभारती प्रकाशन से प्रकाशित उनके उपन्यास 'धर्मपुर लॉज' के लिए, 'अंतर्राष्ट्रीय शिवना कविता सम्मान' महत्त्वपूर्ण कवयित्री रश्मि भारद्वाज को सेतु प्रकाशन से प्रकाशित उनके कविता संग्रह 'मैंने अपनी माँ को जन्म दिया है' के लिए प्रदान किया गया। 'अंतर्राष्ट्रीय शिवना कृति सम्मान' शिवना प्रकाशन से प्रकाशित कहानी संग्रह 'दो ध्रुवों के बीच की आस' के लिए कथाकार गरिमा संजय दुबे को प्रदान किया गया। ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अमेरिका तथा शिवना प्रकाशन द्वारा हर वर्ष साहित्य सम्मान प्रदान किए जाते हैं। ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अमेरिका का यह पाँचवा सम्मान है। हिन्दी की वरिष्ठ कथाकार, कवयित्री, संपादक डॉ. सुधा ओम ढींगरा तथा उनके पति डॉ. ओम ढींगरा द्वारा स्थापित इस फ़ाउण्डेशन के तहत दिए जाते हैं।

आयोजन में बतौर मुख्यातिथि शामिल हुए अभिनेता यशपाय शर्मा ने कहा कि फ़िल्म फेयर और कान्स फ़िल्म महोत्सव की तरह का साहित्यिक आयोजन देखने को मिला। साथ ही उन्होंने कहा कि जो अभिनेता साहित्य से जुड़ा होता है उसके लिए किसी भी किरदार में ढलना आसान होता है। जब हम पढ़ते हैं तो हमारे अंदर वे किरदार आ जाते हैं। हम पढ़ते-पढ़ते उनमें ढल जाते हैं। किताबों में हर तरह के किरदार जीते हैं। उन्हीं से मिलते-जुलते किरदार फिल्मों में निभाने को मिलते हैं। यही कारण है कि जो पढ़ते हैं वे किसी भी किरदार को निभाते समय आसानी से उसमें ढल जाते हैं। जो पढ़ते हैं उनकी अदाकारी अलग ही दिखती है। जो साहित्य से जुड़े हैं उनके किरदार में अलग ही निखार आता है और वह पर्दे पर दिखाई देता है। इरफान खान, नवाज़ुद्दीन, मनोज पहावा, सीमा पहावा, कुमुद मिश्रा और संजय शर्मा की अदाकारी अलग ही दिखती है। इंड्रस्टी में कई कलाकार ऐसे हैं जो साहित्य से जुड़े हैं। अभिनेता यशपाल शर्मा ने कहा कि एक अभिनेता को साहित्य पढ़ना चाहिए। साहित्य आपको अपने जीवन के अलग-अलग कैरेक्टर में लेकर जाता है। इसके साथ ही उन्होंने कहा कि कुछ किरदार ऐसे होते हैं जो आप पढ़ते-पढ़ते जीने लगते हैं। जब मैं अकाल में उत्सव पढ़ रहा था, तो में उसके मुख्य किरदार को अपने अंदर जी कर चल रहा था। उसकी मुसीबत मेरी मुसीबत हो गई थी। जब उसकी खड़ी फसल पर पहला ओला गिरा तो मुझे लगा कि मेरी फसल पर ओला गिरा। यह सोचकर ही मेरी रूह काँप गई थी। अकाल में उत्सव में जो मुख्य किरदार है किसान। उसकी व्यथा को इतने अच्छे से प्रस्तुत किया है कि मैंने उसे लम्बे समय तक जिया। आयोजन को लेकर उन्होंने कहा कि इस तरह के आयोजन साहित्यकारों को प्रोत्साहित करते हैं। ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन और शिवना प्रकाशन के इस प्रयास सराहनीय है। इस दौरान यशपाल शर्मा ने कई ख्यात कवियों के कविताएँ उन्हीं के अंदाज़ में सुनाई। उनके काव्य पाठ ने लोगों को उन कवियों से जोड़ दिया जिनकी रचनाएँ उन्होंने सुनाई। वहीं आईसेक्ट के कुलाधिपति संतोष चौबे ने कहा कि ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन और शिवना प्रकाशन के इस आयोजन ने कई महानगरों में आयोजित हुए कार्यक्रमों को पीछे छोड़ दिया है। आने वाले समय में सीहोर भी साहित्य के गढ़ के रूप में विकसित हो जाएगा और यहीं बड़े-बड़े समारोह आयोजित किए जाएँगे। पर्यावरणविद अमृता राय ने कहा कि जब किसी भी रचनाकार को इतने भव्य आयोजन में सम्मान मिलता है तो पूरे साहित्य जगत् को सम्मान मिलता है। आज का साहित्यकार समाज को समझकर नए ढंग से पाठकों को कई विधाओं में साहित्य परोस रहा है। इस

तरह के आयोजन उन्हें भी उत्साहित करता है। इसके साथ ही सम्मानित साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं और साहित्य के बारे में संक्षिप्त में बताया। आयोजन में ममता कालिया, पंकज सुबीर, रणेंद्र, उमेश पंत, गीता श्री, लक्ष्मी शर्मा, इरशाद ख़ान सिकंदर, प्रज्ञा, रश्मि भारद्वाज, गरिमा संजय दुबे तथा मोतीलाल आलमचंद्र सहित कई ख्यात साहित्यकार शामिल हुए। उषाकिरण खान की ओर से सम्मान लेने एडीजीपी अनुराधा शंकर सिंह और तेजेन्द्र शर्मा की ओर से सम्मान लेने उनकी बेटी फ़िल्म अभिनेत्री आर्या शर्मा सीहोर पहुँची थीं। अनिल प्रभा कुमार की तरफ़ से सम्मान वरिष्ठ कथाकार गीताश्री ने प्राप्त किया।

आयोजन को सफल बनाने में समन्वयक आकाश माथुर और पंखुरी पुरोहित के साथ अनिल पालीवाल, सुनील भालेराव, कैलाश अग्रवाल, उमेश शर्मा, अशोक राय, हितेंद्र गोस्वामी, राजकुमार राठौर, दिलीप शाह, राजेश चाण्डक, अथर अली, शहरयार खान, स्वदेश विश्वकर्मा, सुरेंद्र ठाकुर, धर्मेंद्र कौशल, संजीत धुर्वे, जितेंद्र राठौर, सन्नी गोस्वामी, सुनील पेरवाल, शिवम गोस्वामी, ताहिर, सुजात, सलमान, सहित अन्य सदस्य शामिल रहे। कार्यक्रम के अंत में आभार सुधा ओम ढींगरा ने आनलाइन जुड़कर व्यक्त किया।

लड़कियों को कहा सशक्त होना ज़रूरी

4 जून को ही ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन का बालिकाओं के लिए बालिका सशक्तिकरण आयोजन किया गया। जिसमें लेखिकाओं ने ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन के नि:शुल्क कंप्यूटर शिक्षा केंद्र की 400 बालिकाओं से चर्चा की। इसके साथ ही आईसेक्ट ग्रुप ऑफ युनिवर्सिटी के डायरेक्टर सिद्धार्थ चतुर्वेदी ने बालिकाओं को मार्ग दर्शन दिया। आयोजन में छात्राओं ने सभी अतिथियों से सवाल किए। साहित्यकार गीता श्री, लक्ष्मी शर्मा, प्रज्ञा, रश्मि भारद्वाज, गरिमा संजय दुबे के साथ पर्यावरणविद अमृता राय से चर्चा की। बालिकाओं को मार्गदर्शन देते हुए सभी अतिथियों ने बताया कि आज आपको लग

रहा है कि हम मंच पर बैठे हैं तो बड़े परिवारों से हमारा संबंध है और हमारी ज़िंदगी आसान थी। जो कुछ भी हमें मिला वह आसानी से मिल गया, लेकिन ऐसा नहीं है। हम सब आपकी ही तरह सामान्य परिवारों से हैं। सभी ने मेहनत की सपने देखे और फिर यह मुकाम हासिल किया। हर एक के लिए यही रास्ता है। मेहनत करके ही आगे बड़ा जा सकता है। बालिकाओं से चर्चा करते हुए पर्यावरणविद् अमृता राय ने कहा कि सशक्त का अर्थ हर मायने में व्यक्ति की क्षमता से योग्य व्यक्ति की क्षमतावान होता है। इसलिए महिला हो या पुरुष पहले उन्हें योग्य बनना चाहिए। जिससे उनमें क्षमता विकसित होती है। पुरुष प्रधान समाज में पुरुष योग्य हो या न हो, उनमें क्षमता हो या न हो, पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक और अन्य महत्त्वपूर्ण निर्णय वही लेता है। जबकि महिलाओं को इसके लिए पहले अपने आपको साबित करना होता है। जब महिलाएँ पुरुषों के साथ बराबरी से पारिवारिक और सामाजिक निर्णय लेने के साथ अपना मत बिना किसी बंदिश के रख सकेंगी, तब महिला सशक्त होगी। महिला सशक्तिकरण के लिए एक और महत्त्वपूर्ण चीज़ है आर्थिक रूप से सशक्त होना। महिलाएँ शुरू से पिता, भाई, पति पर निर्भर रहती हैं। और तो ओर जिस बच्चे को वह जन्म देती है एक समय बाद उसे उस पर भी निर्भर होना पड़ता है। यह निर्भरता आर्थिक कमज़ोरी के कारण होती है। यदि महिला योग्य होगी और आर्थिक रूप से मज़बूत होगी तो वह सभी बंधनों से मुक्त होकर परिवार के लिए निर्णय तो लेगी ही और खुद के लिए भी उचित फ़ैसले ले सकेगी। मेरे मायने में यही महिला सशक्तिकरण है। आप मंच पर जिन महिलाओं को देख रहे हैं वे सब सशक्त हैं। यहाँ कई बच्चियाँ अपने पिता, भाई, पति के साथ आई है। वे खुद इसकी अनुमति भी दूसरे से लेकर आई है। जबकि इस तरह के आयोजन में आने के लिए उन्हें खुद निर्णय लेना चाहिए। मंच पर जो महिलाएँ हैं वे यहाँ किसी के साथ या अनुमति लेकर नहीं आई है, यह उनका निर्णय था इसलिए वे यहाँ आईं। मुक्त होने का मतलब यह नहीं कि

आप किसी से सलाह भी न करें। महिलाएँ अपनी साथी महिलाओं, परिवार के पुरुषों से सलाह लें, लेकिन निर्णय उनका खुद का हो। उन्होंने ज़ोर देकर फिर कहा कि जो महिलाएँ खुद के लिए निर्णय लेना चाहती हैं वे पहले योग्य बने और क्षमताएँ विकसित करें। इसके साथ ही आईसेक्ट के डायरेक्टर सिद्धार्थ चतुर्वेदी ने कहा कि आर्थिक समृद्धि हमें सशक्त बनाती है, लेकिन बालिकाओं को सशक्त बनाने की शुरूआत घर से होती है। जब माता-पिता उन पर भरोसा जताएँगे तभी वे खुद पर भरोसा जता पाएँगी। परिवार में होता यह है कि कोई भी काम हो बालिका को यह कहकर मना कर दिया जाता है कि तुम लड़की हो, तुम यह नहीं कर पाओगी। जबकि माता-पिता को चाहिए कि वे कम से कम बालिकाओं को उनकी शिक्षा, छोटी-मोटी खरीदारी और लोगों से अकेले मिलने के लिए प्रेरित करें। कुछ भी काम हो भाई, चाचा, मामा को बालिकाओं के साथ न भेजें। परिवार के मार्गदर्शन में बालिकाओं को खुद से जुड़े निर्णय लेने दें। जिससे भविष्य में उन्हें किसी पर निर्भर रहना नहीं पड़ेगा। साथ ही उन्हें योग्य बनाए घर की योग्य महिला आने वाली पीढ़ी को अपने से ज़्यादा योग्य बना सकती है। हम सब को महिलाओं को सशक्त करने के लिए शुरूआत घर से करनी होगी। इसके साथ ही अन्य अतिथियों ने भी बालिकाओं को मार्गदर्शन दिया। कार्यक्रम के अंत में बालिकाओं से अतिथियों ने भी सवाल जवाब किए, जिसका उन्होंने पूरे आत्मविश्वास के साथ जवाब दिया।

फ़िल्मों के ट्रेलर लॉच

साहित्यकार सम्मान समारोह में शिवना क्रिएशन और स्ट्रॉबेरी क्रिएशन द्वारा निर्मित दो फ़िल्मों का ट्रेलर भी लॉच किया गया। फ़िल्म का निर्देशन इरफ़ान खान ने किया है। वहीं फ़िल्म की पटकथा पंकज सुबीर ने लिखी है। कौन सी ज़मीन अपनी फ़िल्म डॉ. सुधा ओम ढींगरा की कहानी कौन सी ज़मीन अपनी पर आधारित है। जो प्रवासी भारतीय की कहानी है। जिसमें बताया गया है कि किस तरह एक व्यक्ति जो अपनी जन्मभूमि से दूर रहकर

जीवनभर वहाँ लौटने के सपने देखता था और जब वह वहाँ लौटता है तो वह ज़मीन उसे अपनाती ही नहीं। उसे वहीं लौटना पड़ता है, जिस ज़मीन को वो कभी अपना नहीं पाया था। वहीं तुम लोग फ़िल्म पंकज सुबीर की कहानी पर बनाई गई है। यह कहानी दो अलग-अलग समुदाय के दोस्तों की कहानी है। जिनके मत अलग-अलग हैं, लेकिन मन मिला हुआ है। समाज में फैल रही आपसी द्वेषता के इतर ये दोनों एक दूसरे के इतने गहरे मित्र हैं कि उस द्वेषता का इनके रिश्ते पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इन दोनों फ़िल्मों के ट्रेलर अभिनेता यशपाल शर्मा ने लॉन्च किए। इस दौरान फ़िल्म निर्देशक इरफ़ान खान की सभी ने प्रशंसा की।

पंद्रह किताबों का किया विमोचन

सम्मान समारोह के दौरान शिवना प्रकाशन से प्रकाशित जुलाई के सेट की पंद्रह किताबों का विमोचन अतिथियों ने किया। आयोजन में पंकज पराशर के उपन्यास जलांजलि, गीताश्री के कहानी संग्रह मत्स्यगंधा, सूर्यवाला के कहानी संग्रह कथा सप्तक, मलिका सेन गुप्ता के बंग्ला उपन्यास सीतायन का हिन्दी अनुवाद सुशील कांति ने किया, जिसका विमोचन भी आयोजन में किया गया। इसके साथ रश्मि भारद्वाज के संपादन में प्रकाशित संस्मरण संकलन प्रेम के पहले बसंत में डॉ. सुधा ओम ढींगरा के संपादन में प्रकाशित कविता संकलन मन की तुरपाई, अवधेशप्रताप सिंह की पुस्तक विधानमंडल पद्धति एवं प्रक्रिया, वंदना अवस्थी दुबे के संस्मरण नमन, शिवकुमार अर्चन के गीत संग्रह साधो दरस परस छूटे, अशोक अंजुम के ग़ज़ल संग्रह अशोक अंजुम की 101 ग़ज़लें, अनिता दुबे के कविता संग्रह अंकुरित होती है स्त्रियाँ, सपना सिंह के उपन्यास धर्महत्या, श्याम अविनाश के कविता संग्रह धीमेपन के क़रीब, सतेंद्र मित्तल के कहानी संग्रह सूरजपुरी से चौक के साथ ओमप्रकाश शर्मा के यात्रा संस्मरण नर्मदा के पथिक के दूसरे संस्करण का विमोचन किया गया।

000

आख़िरी पन्ना

कह मुझे पटेल

ईगो.. वैसे तो इंसानी स्वभाव का एक आवश्यक हिस्सा होता है। ऐसा कोई नहीं जिसके अंदर कहीं न कहीं, थोड़ा-बहुत ईगो नहीं होता हो। ईगो की परिभाषा कुछ इस प्रकार होती है- "अपने ही बारे में स्वयं कोई ग़लत अनुमान, कोई ग़लत धारणा बना लेना, और फिर उस ग़लत को सही कहे जाने की हर किसी से उम्मीद रखना।" हम जो नहीं हैं, वह अपने आप को मान कर चलने लगते हैं और फिर सोचते हैं कि सारी दुनिया भी उसको माने। यही होता है हमारा ईगो। हमें यह पता ही नहीं चलता कि जिसको सारी दुनिया से मनवाने की ज़िद हम ठान कर बैठे हैं, सबसे दुश्मनियाँ पालते फिर रहे हैं, वह तो असल में एक चश्मा है, जिसे पहन कर हम अपने आप को आईने में देख रहे हैं। और चाह रहे हैं कि सारी दुनिया भी हमें देखते समय वही चश्मा पहने। आज ईगो की बात इसलिए हो रही है कि इन दिनों सबसे ज़्यादा इस रोग का शिकार साहित्य समाज हो रहा है। हमारे मालवा में एक कहावत है 'कह मुझे पटेल' (मुझे शब्द की जगह जो शब्द प्रयोग किया जाता है, वह यहाँ नहीं दिया जा सका)। इसके पीछे एक कहानी है, एक ग्रामीण चाहता कि पूरा गाँव उसे पटेल कहे, पर कोई नहीं कहता था, क्योंकि गाँव का पटेल कोई और था। जब उसकी शादी हुई तो उसने सोचा, अब कोई तो मुझे पटेल कहेगा। उसने पत्नी पर दबाव डाला कि वह उसे पटेल कह कर बुलाए। पत्नी भी उसी गाँव की थी और उसे पता था कि गाँव का पटेल उसका पति नहीं बल्कि कोई और है, तो उसने पटेल कहने से इनकार कर दिया। पति ने उसे पीटना शुरू कर दिया, पीटता जाता और कहता जाता 'कह मुझे पटेल'। ऐसा ही कुछ हमारे साहित्य समाज में भी इन दिनों हो रहा है। हम सब अपने आप को पटेल कहलवाने की ज़िद पकड़े हुए हैं। जबकी हक़ीक़त यह है कि हम सब एक ही गाँव के निवासी हैं, और हम सब एक दूसरे को अच्छी तरह से जानते हैं। यह भी जानते हैं कि पटेल कहलाने के लिए अपना नाम पटेल रख लेने से कुछ नहीं होगा, पटेल कहलाने के लिए पटेल बनना होगा। जब आप पटेल बन जाओगे तो सब आपको अपने आप ही पटेल कहने लगेंगे। यह जो पटेल कहलाने की इच्छा है, यही तो आपका ईगो है। आप पटेल हो नहीं लेकिन आपने मान लिया है कि आप पटेल हो, और अब चाह रहे हो कि सारी दुनिया भी आपको पटेल कहे, भले ही अभी आपने पटेलाई के रूप में धेले भर का भी काम नहीं किया है। इन दिनों सोशल मीडिया पर साहित्य समाज के साथी बहुत क्रोध में दिखाई दे रहे हैं। नथुने फड़कते हुए, भवें ऊपर की तरफ़ तनी हुईं और मुट्ठियाँ भिंची हुईं। केवल अनुकूल को सुनने के लिए दक्ष हो चुके कान तथा केवल अनुकूल को देखने के लिए दक्ष आँखें.... जब तक अनुकूलता है, तब तक सब सामान्य रहता है, जैसे ही कुछ प्रतिकूल होता है, वैसे ही सरापा युद्ध भंगिमा धारण कर ली जाती है। उस सीमा तक जब मुँह से शब्दों के साथ-साथ झाग भी निकलने लगता है। प्रतिकूलता ज़रा भी बर्दाश्त नहीं है। और इसलिए बर्दाश्त नहीं है क्योंकि हमने अपने दिमाग़ को केवल अनुकूल हेतु अनुकूलित कर लिया है, अब हमारा अपने पर कुछ नियंत्रण नहीं है, अब जो कुछ कर रहा है वह दिमाग़ कर रहा है। दिमाग़ आपको कहता है कि वह जो प्रतिकूल है वह दोस्त नहीं हो सकता, वह तो सरासर दुश्मन है और बस हम उसी अनुरूप व्यवहार करने लगते हैं। यह जो अनुकूलन है इसे ही हम ईगो कह सकते हैं। साहित्य समाज को इसका शिकार नहीं होना चाहिए, पर हो रहा है। वह समाज, जो शब्दों, किताबों, विचारों, ज्ञान, बहसों, विमर्शों, असहमतियों, प्रतिकूलताओं से ही अपने जीने की ख़ुराक प्राप्त करता रहा है, वह अचानक अनुकूलता की तरफ़ मुड़ गया है। अब उसे केवल सहमति के स्वर ही पसंद आ रहे हैं। तो क्या हम मान कर चलें कि जिस प्रकार सारा विश्व एक प्रकार की अघोषित तानाशाही की तरफ़ मुड़ गया है, हमारा साहित्य समाज भी उसी का अनुसरण और अनुकरण करते हुए उसी दिशा की तरफ़ बढ़ चुका है? सोचिए.... उत्तर मिले तो मुझे भी बताइएगा। क्योंकि इस प्रश्न का उत्तर तलाशना बहुत ज़रूरी है। **सादर आपका ही**

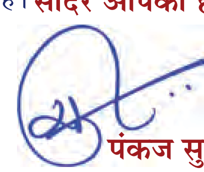

पंकज सुबीर

पंकज सुबीर
पी. सी. लैब, शॉप नंबर 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001
मोबाइल- 9977855399
ईमेल- subeerin@gmail.com

ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन बालिका सशक्तिकरण कार्यशाला, सीहोर, मप्र

बालिका सशक्तिकरण कार्यशाला का शुभारंभ अतिथियों द्वारा तथा ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन की तरफ़ से अतिथियों का स्वागत

कार्यशाला में बच्चियों को मार्गदर्शन प्रदान करते अतिथि- पर्यावरण विद् श्रीमती अमृता राय तथा आइसेक्ट के संचालक श्री सिद्धार्थ चतुर्वेदी

बालिका सशक्तिकरण कार्यशाला में बच्चियों को मार्गदर्शन प्रदान करते अतिथि साहित्यकारगण डॉ. लक्ष्मी शर्मा, गीताश्री तथा रश्मि भारद्वाज

कार्यशाला में बच्चियों को मार्गदर्शन प्रदान करते अतिथि साहित्यकारगण डॉ. प्रज्ञा तथा आस्था मनोचा, कार्यक्रम में उपस्थित श्रोतागण

प्रशिक्षण प्राप्त कर रही बालिकाओं द्वारा बालिका सशक्तिकरण कार्यशाला में पधारे हुए अतिथियों को हस्तनिर्मित स्मृति चिह्न प्रदान किए गए

ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन बालिका सशक्तिकरण कार्यशाला, सीहोर, मप्र

सीहोर में ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन द्वारा चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र में प्रशिक्षण प्राप्त कर रही बालिकाओं द्वारा बालिका सशक्तिकरण कार्यशाला में पधारे हुए अतिथियों को हस्तनिर्मित स्मृति चिह्न प्रदान किए गए।

कार्यशाला में पधारे अतिथियों को ढींगरा फ़ाउण्डेशन की तरफ़ से स्मृति चिह्न प्रदान करते पंखुरी पुरोहित, अनिल पालीवाल, उमेश शर्मा

बालिका सशक्तिकरण कार्यशाला में पधारे हुए अतिथियों को ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन की तरफ़ से स्मृति चिह्न प्रदान करते आकाश माथुर

बालिका सशक्तिकरण कार्यशाला में पधारे हुए अतिथियों को ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन की तरफ़ से स्मृति चिह्न प्रदान करते आकाश माथुर

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक ज़ुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।